

दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय सुरक्षित: 24.11.2023

निर्णय उद्घोषित किया गया: 18.12.2023

रि.या.(आप.) 544/2020 और आप.वि.आ. 4088/2020

डॉ. अरुण मोहन

.....याचिकाकर्ता

बनाम

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो

.....प्रत्यर्थी

इस मामले में प्रस्तुत अधिवक्ता:

याचिकाकर्ता के लिए : श्री अर्शदीप सिंह खुराना और सुश्री तनवी शर्मा,
अधिवक्तागण।

प्रत्यर्थी के लिए : श्री प्रशांत वर्मा, सीबीआई के लिए वि.लो.अभि. के
साथ सुश्री प्रज्ञा वर्मा एवं श्री पंकज कुमार
अधिवक्तागण ।

श्री राम निवास बुरी और श्री ऋषभ शर्मा,
प्रत्यर्थी-2 के अधिवक्तागण।

कोरम:

माननीय न्यायमूर्ति श्री तुषार राव गेडेला

निर्णय

न्या. तुषार राव गडेला

[कार्यवाही हाइब्रिड माध्यम द्वारा की गई है]

1. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता की ओर से भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 सहपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "सीआरपीसी") की धारा 482 के तहत दायर की गई है जिसमें भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 जो कि 2018 में संशोधित (संक्षेप में "पीसी अधिनियम") की धारा 7 और 7ए सहपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 120-बी (संक्षेप में "आईपीसी") के तहत पुलिस थाना सीबीआई, एसीबी, नई दिल्ली में दर्ज प्राथमिकी आरसी-डीएआई-2020-ए-0001 दिनांक 11.01.2020 एवं उसके बाद होने वाली सभी कार्यवाहियों रद्द करने के लिए परमादेश या किसी अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश की मांग की गई है जो वर्तमान में विद्वान विशेष न्यायाधीश (पीसी) अधिनियम, नई दिल्ली के समक्ष लंबित है याचिकाकर्ता ने विशेष न्यायाधीश (पी. सी.) अधिनियम, सी. बी. आई.-13, नई दिल्ली द्वारा याचिकाकर्ता को 2 महीने की न्यायिक हिरासत का निर्देश देते हुए पारित किए गए आक्षेपित आदेश को रद्द करने की भी मांग की है।

वर्तमान याचिका का इतिहास:-

2. इस न्यायालय ने पहले दिनांक 24.02.2020 के आदेश के माध्यम से वर्तमान याचिका पर नोटिस जारी किया था। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता द्वारा

दिनांकित 24.02.2020 के आदेश में संशोधन के लिए दायर एक आवेदन आप.वि.आ.4761/2020 पर, इस न्यायालय ने दिनांकित 03.03.2020 के आदेश के माध्यम से निम्नलिखित आदेश पारित किया था:-

“आप.वि.आ. सं.4761/2020

1. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने वर्तमान आवेदन दायर किया है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह इंगित किया गया है कि दिनांक 24.02.2020 के आदेश के परिच्छेद संख्या 4 में एक अनवधानता से हुई त्रुटि है, क्योंकि याचिकाकर्ता को लेनदारों की समिति (सीओसी) द्वारा एक समाधान पेशेवर के रूप में नियुक्त किया गया था, न कि अंतरिम समाधान पेशेवर के रूप में। उक्त आदेश दिनांक 24.02.2020 के पैराग्राफ संख्या 4 को तदनुसार निम्नानुसार पढ़ने के लिए सुधारा गया है:

“4. याचिकाकर्ता लेनदारों की समिति (सी.ओ.सी.) द्वारा नियुक्त एक समाधान पेशेवर है। यह तर्क दिया जाता है कि लेनदारों की समिति (सी.ओ.सी.) न तो लोक प्राधिकरण है और न ही न्यायालय है।”

2. याचिकाकर्ता का यह भी कहना है कि इस न्यायालय ने आदेश दिया था कि सुनवाई की अगली तारीख तक कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाए जाएं। हालाँकि, उस वाक्य को किसी भी तरह उक्त आदेश में टाइप नहीं किया गया है।

3. तदनुसार, यह भी निर्देश दिया जाता है कि सुनवाई की अगली तारीख तक कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाए जाएंगे।

4. आवेदन का निपटारा कर दिया गया है।

5. कोर्ट मास्टर के हस्ताक्षर के तहत दस्ती का आदेश दिया जाए।”

3. इसके बाद इस न्यायालय ने दिनांक 12.02.2021 के आदेश के माध्यम से वर्तमान याचिका से उत्पन्न प्रश्न की जांच तैयार की और उस पर विचार किया जो इस प्रकार है:-

“वर्तमान याचिका में शामिल मुद्दा यह है कि क्या याचिकाकर्ता जो एक 'समाधान पेशेवर' है, एक लोक सेवक है या नहीं और इस प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध के लिए उत्तरदायी होगा।”

4. इसके अलावा, भारतीय दिवाला और दिवालियापन बोर्ड (संक्षेप में "आईबीबीआई") द्वारा दायर एक मध्यक्षेप/अभियोग आवेदन पर नोटिस जारी किया गया था, जिसमें दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 (संक्षेप में "आईबीसी") के तहत अंतरिम समाधान पेशेवर /समाधान पेशेवर (संक्षेप में "आईआरपी/आरपी") की भूमिका ग्रहण करते हुए दिवाला समाधान व्यावसायिकों को मान्यता देने में आईबीबीआई द्वारा निभाई गई भूमिका पर विचार किया गया था, जिसका उल्लेख दिनांक 14.01.2020 के आक्षेपित आदेश में भी मिलता है। कि दिनांक 27.07.2023 के आदेश के तहत, आईबीबीआई की ओर से अभियोग आवेदन को केवल वर्तमान याचिका में उत्पन्न होने वाले कानूनी मुद्दे पर न्यायालय की सहायता करने की सीमा तक अनुमति दी गई थी

वर्तमान याचिका के तथ्य:-

5. याचिका में दी गई तारीखों की सूची से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:-

5.1 एफआर टेक इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड के वित्तीय लेनदार (सीडी) श्री करण लालवानी ने एफआर टेक इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा एनसीएलटी मुंबई बेंच में दिवाला एवं दिवालियापन संहिता, 2016 की धारा 7 के तहत वित्तीय लेनदार द्वारा दायर की जाने वाली याचिका में

याचिकाकर्ता के नाम को आईआरपी के रूप में प्रस्तावित करने के लिए संपर्क किया था। याचिकाकर्ता ने एक निर्दिष्ट प्रारूप फॉर्म में परस्पर नियमों और शर्तों पर वित्तीय लेनदार द्वारा प्रस्तावित सीडी के आईआरपी के रूप में कार्य करने के लिए सहमति व्यक्त की।

5.2 याचिकाकर्ता को श्री करण लालवानी बनाम एफआर टेक इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड शीर्षक वाले मामले में सीपी संख्या 2891/1-बीपी/2019 में एनसीएलटी, मुंबई बेंच द्वारा पारित दिनांक 14.11.2019 के आदेश की एक प्रति के साथ ई-मेल के माध्यम से वित्तीय लेन-देन से एक सूचना प्राप्त हुई। जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को आईआरपी के रूप में नियुक्त किया गया था। आईआरपी के रूप में याचिकाकर्ता की नियुक्ति और कार्यकाल दिवाला एवं दिवालियापन संहिता, 2016 की धारा 16 के प्रावधानों के अनुरूप था। आईआरपी का कार्यकाल लेनदारों की समिति (संक्षेप में "सीओसी") द्वारा आरपी की नियुक्ति की तारीख तक था।

5.3 आई.आर.पी. के रूप में याचिकाकर्ता ने अन्य बातों के साथ-साथ सार्वजनिक घोषणा जारी की और दावेदारों/लेनदारों से उनके समर्थन में दस्तावेजी साक्ष्य के साथ दावे आमंत्रित किए। विभिन्न श्रेणियों के तहत दावेदारों/लेनदारों से दिनांक 13.12.2019 दावे जमा करने की अंतिम तिथि होने तक याचिकाकर्ता को 2,12,08,445/- रुपये की राशि के लिए कुल आठ दावे प्राप्त हुए।

5.4 आईआरपी के रूप में याचिकाकर्ता ने उपरोक्त आर सी मामले में शिकायतकर्ता की पत्नी श्रीमती नम्रता बुगालिया के दावे सहित विभिन्न श्रेणियों के तहत लेनदारों/दावेदारों से प्राप्त दावों का समाकलन और सत्यापन किया। शिकायतकर्ता की पत्नी श्रीमती नम्रता बुगालिया ने कथित तौर पर अपने दावे के समर्थन में जाली और मनगढ़ंत दस्तावेज प्रस्तुत किए, जिसमें 06.03.2017 के अमुद्रांकित पावती और आविष्कार समझौते की एक प्रति भी शामिल थी, जिसे 03.03.2017 को निष्पादित किया गया था, जो याचिकाकर्ता के अनुसार एक जाली और मनगढ़ंत दस्तावेज प्रतीत होता है। चूंकि, उपरोक्त टिप्पणियों ने शिकायतकर्ता की पत्नी द्वारा निष्पादित कार्य के संबंध में कई प्रश्न उठाए और उक्त ई-मेल ने उसी के बारे में महत्वपूर्ण विवरण का खुलासा नहीं किया, याचिकाकर्ता ने तुरंत श्रीमती बुगालिया को जवाब दिया और उनके दावों के समर्थन में अतिरिक्त विवरण की मांग की, जो दिवाला एवं दिवालियापन संहिता, 2016 के प्रावधानों के अनुसार दावों के सत्यापन प्रक्रिया का एक हिस्सा है।

5.5 याचिकाकर्ता ने शिकायतकर्ता की पत्नी श्रीमती नम्रता बुगालिया सहित सभी दावेदारों/लेनदारों को रिमाइंडर ई-मेल भेजा, जिसमें उन्हें 14.12.2019 को ईमेल के माध्यम से याचिकाकर्ता द्वारा वांछित दस्तावेज और जानकारी प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी ताकि याचिकाकर्ता

आईआरपी के रूप में दिवाला एवं दिवालियापन संहिता के तहत प्रदान की गई निर्धारित अवधि के भीतर लेनदारों/दावेदारों की सूची को अंतिम रूप देने में सक्षम बनाया जा सके।

- 5.6 प्राप्त सभी दावों के समाकलन के बाद, याचिकाकर्ता ने कॉर्पोरेट ऋणदाताओं के सी.ओ.सी. का गठन किया। सी.ओ.सी. का गठन केवल एक वित्तीय लेनदार, श्री करण लालवानी के साथ किया गया था, जिनके पास 100% मतदान का अधिकार था।
- 5.7 याचिकाकर्ता ने पहली सी.ओ.सी. बैठक का नोटिस और एजेंडा सी.ओ.सी. के सदस्यों को 5 दिनों का नोटिस देकर ई-मेल द्वारा प्रसारित किया और पहली सी.ओ.सी. बैठक 28.12.2019 पर आयोजित होने वाली थी।
- 5.8 सीओसी की पहली बैठक नोएडा में याचिकाकर्ता के कार्यालय में हुई थी। कि पहली बैठक में, सी.ओ.सी. ने अन्य बातों के साथ-साथ 28.12.2019 से याचिकाकर्ता को सी.डी. के आर.पी. के रूप में नियुक्त करने का संकल्प लिया। आई.आर.पी. ने आई. बी. सी., 2016 की धारा 22(3)(क) अनुसार आर. पी. के रूप में कार्य करने के लिए सहमति दी थी। नतीजतन, दिनांक 28.12.2019 पर सी. ओ. सी. द्वारा आर. पी. के रूप में याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर, आई. बी. सी., 2016 की धारा

16(5) के प्रावधानों के अनुसार आई. आर. पी. के रूप में याचिकाकर्ता का कार्यकाल/कार्यकाल उसी दिन पूरा हो गया था।

5.9 सी. ओ. सी. की बैठक के कार्यवृत्त को रिकॉर्ड किया गया और ई-मेल द्वारा सी. ओ. सी. के सदस्यों के बीच 48 घंटों के भीतर वितरित किया गया।

5.10 याचिकाकर्ता को आर. पी. के रूप में नियुक्त करते हुए सी. ओ. सी. की बैठक के कार्यवृत्त को मंजूरी दी गई। आर. पी. के रूप में याचिकाकर्ता को आई. बी. सी., 2016 की धारा 23 के संदर्भ में सी. डी. का सी. आई. आर. पी. संचालित करना था। आरपी के रूप में याचिकाकर्ता को सी. ओ. सी. की देखरेख में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना था। याचिकाकर्ता को आई. बी. सी., 2016 की धारा 25 और 28 के प्रावधानों के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक था। आई. बी. सी., 2016 की धारा 5(2)(ख) के तहत याचिकाकर्ता को तीसरे पक्ष के साथ सी. डी. का प्रतिनिधित्व करने और उसकी ओर से कार्य करने और सी. डी. के लाभ के लिए अधिकारों का प्रयोग करने का भी आदेश दिया गया था।

5.11 दिनांक 30.12.2019 पर टेलीफोन पर चर्चा के दौरान, याचिकाकर्ता ने शिकायतकर्ता को बताया कि उसे 28.12.2019 पर आयोजित अपनी पहली बैठक में सी. ओ. सी. द्वारा आर. पी. के रूप में नियुक्त किया

गया था। याचिकाकर्ता ने शिकायतकर्ता को यह भी बताया कि सीओसी ने शिकायतकर्ता की पत्नी से ब्याज सहित 15.20 लाख रुपये वसूलने का फैसला किया था क्योंकि उसने ये राशि जाली और मनगढ़ंत दस्तावेजों के आधार पर प्राप्त की थी।

5.12 कि याचिकाकर्ता ने हैदराबाद स्थित दावेदारों/लेनदारों के साथ हैदराबाद में एक बैठक निर्धारित की थी, जिन्होंने सीडी की संपत्ति और व्यावसायिक रिकॉर्ड को गैरकानूनी और अवैध रूप से बना रखा था। दिनांक 07.01.2020 पर, सी. ओ. सी. प्राधिकरण के अनुसार, याचिकाकर्ता ने ई-मेल द्वारा और शिकायतकर्ता की पत्नी सहित सभी दावेदारों/लेनदारों को डाक द्वारा मांग नोटिस भेजे गए।

5.13 कि मांग नोटिस दिनांक 07.01.2020 का जवाब देने और अपनी पत्नी के खिलाफ किसी भी कानूनी कार्रवाई को रोकने के बजाय, शिकायतकर्ता ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत एसपी, सीबीआई, दिल्ली के साथ याचिकाकर्ता के खिलाफ झूठी और मनगढ़ंत शिकायत दर्ज की। शिकायतकर्ता के बारे में कहा गया है कि उसने दिनांक 07.01.2020 को याचिकाकर्ता से मांग नोटिस की प्राप्ति को छुपाया और साथ ही जाली और मनगढ़ंत दस्तावेजों के आधार पर सीडी से 15.20 लाख रुपये के गबन के अपने आचरण को भी छुपाया। प्रत्यर्थी संख्या. 1 ने याचिकाकर्ता और श्री परेश कुमार के खिलाफ भ्रष्टाचार अधिनियम की

धारा 7 और 7 ए के तहत आरसी-डीएआई-2020-ए-001 के तहत प्राथमिकी दर्ज की, जिसे भा.द.स.की धारा 120 बी के साथ पढ़ा गया है। प्रत्यर्थी ने गैरकानूनी और अवैध रूप से भ्रष्टाचार अधिनियम के तहत मामले की जांच करने का अधिकार क्षेत्र ग्रहण किया, इस तथ्य के बावजूद कि न तो याचिकाकर्ता और न ही परेश कुमार लोक सेवक हैं।

5.14 प्रत्यर्थी संख्या.1 ने यह दावा करते हुए श्री परेश कुमार को गिरफ्तार कर लिया कि उसने शिकायतकर्ता से साढ़े तीन लाख रुपये की राशि ली थी। याचिकाकर्ता को सीबीआई कार्यालय से अलग से गिरफ्तार किया गया था। शिकायत दर्ज करने और प्राथमिकी दर्ज करने के बीच किए गए कथित सत्यापन के दौरान, प्रत्यर्थी संख्या. 1 ने शिकायतकर्ता द्वारा कॉर्पोरेट देनदार से किए गए कथित दावों की जांच नहीं की। दिनांकित 10.01.2020 और 11.01.2020 सत्यापन रिपोर्ट में, याचिकाकर्ता की भूमिका सत्यापित नहीं की गई थी।

5.15 याचिकाकर्ता को विद्वान ड्यूटी न्यायाधीश के समक्ष पेश किया गया था और उनके 14 दिनों के न्यायिक रिमांड की मांग की गई थी। याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी के अधिकार क्षेत्र पर इस आधार पर सवाल उठाया कि वह पी. सी. अधिनियम के तहत परिभाषित लोक सेवक नहीं है और सी. बी. आई. के पास मामले की जांच करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है और उनके द्वारा की गई कोई भी कार्रवाई आरम्भतः ही अमान्य

है और शिकायतकर्ता के कहने पर उसे अवैध रूप से हिरासत में लिया गया है। विशेष न्यायाधीश पी. सी. अधिनियम, सी. बी. आई.-15 ने याचिकाकर्ता को इस आधार पर संबंधित न्यायालय के समक्ष दिनांक 13.01.2020 को प्रस्तुत करने के निर्देश के साथ 1 दिन की न्यायिक हिरासत में भेज दिया कि इस मुद्दे पर सुनवाई और विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है।

- 5.16 कि याचिकाकर्ता को विशेष न्यायाधीश, सी. बी. आई.-13, नई दिल्ली के संबंधित न्यायालय के समक्ष इस सवाल पर पेश/प्रस्तुत किया गया था कि क्या याचिकाकर्ता पी. सी. अधिनियम के तहत लोक सेवक था।
- 5.17 दिनांक 14.01.2020 पर, विशेष न्यायाधीश पी. सी. अधिनियम द्वारा 2 सप्ताह के लिए न्यायिक रिमांड का आक्षेपित आदेश इस निष्कर्ष पर पारित किया गया था कि याचिकाकर्ता पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 2(ग) के अनुसार एक लोक सेवक है।
- 5.18 कि दिनांक 25.01.2020 पर, याचिकाकर्ता को विद्वान विशेष न्यायाधीश, नई दिल्ली द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था।

इस प्रकार, वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता के खिलाफ प्रश्नगत आक्षेपित प्राथमिकी दर्ज करने से उत्पन्न होती है, जिसके परिणामस्वरूप आक्षेपित रिमांड आदेश पारित किया गया है।

याचिकाकर्ता का प्रतिविरोध

6. याचिकाकर्ता की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता श्री अर्शदीप सिंह खुराना का तर्क है कि मूल आधार जिस पर कथित है याचिकाकर्ता के खिलाफ अभियोजन चलाया जाता है, बिना किसी कानूनी आधार के है और इसलिए, उसे पूरी तरह से अभिखंडित किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता याचिकाकर्ता के खिलाफ विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा के द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में बिना किसी कानूनी आधार के गई टिप्पणियों से भी पीड़ित है और भ्रष्टाचार अधिनियम के साथ-साथ दिवाला एवं दिवालियापन संहिता के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए विद्वान विशेष न्यायाधीश के संदेह और अनुमानों के आधार पर पूरी तरह से पारित किया गया है।

7. याचिकाकर्ता को आई. बी. सी., 2016 की धारा 207 के तहत एक दिवाला पेशेवर एजेंसी (आई. सी. एस. आई. दिवाला पेशेवर संस्थान) के साथ इसके सदस्य के रूप में और भारतीय दिवाला और दिवालियापन बोर्ड (दिवाला पेशेवर) विनियम, 2016 के विनियम 7 के तहत पंजीकृत किया गया है और आई. बी. बी. आई. ने आई. पी. विनियम, 2016 के तहत पंजीकरण का प्रमाण पत्र प्रदान किया है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री खुराना द्वारा उठाई गई दलीलें मुख्य रूप से दो प्रकार की थीं:-

I.आई.बी. सी. के प्रावधानों के तहत नियुक्त दिवाला पेशेवर/समाधान पेशेवर पी. सी. अधिनियम के उद्देश्यों के लिए "लोक सेवक" नहीं हैं।

II. परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता के "लोक सेवक" के दायरे में नहीं आने को देखते हुए, मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर विचाराधीन प्राथमिकी का पंजीकरण आरम्भतः ही अमान्य है।

9. श्री खुराना ने अपनी पहली दलील द्वारा आई. बी. सी. के तहत आई. आर. पी./आर. पी. की नियुक्ति, शुल्क, कार्यकाल, कर्तव्यों और जिम्मेदारियों पर जोर दिया और यह प्रदर्शित करने की कोशिश की कि कैसे आई. आर. पी./आर. पी. "लोक सेवक" की श्रेणी में नहीं आता है, जैसा कि कानून के तहत परिकल्पना की गई है और इस प्रकार, ऐसे आई. आर. पी./आर. पी. पर पी. सी. अधिनियम लागू नहीं होते हैं।

9.1 श्री खुराना, विद्वान अधिवक्ता ने भ्रष्टाचार अधिनियम की धारा 2 में प्रदान की गई "लोक सेवक" की परिभाषा का उल्लेख करते हुए अपनी दलीलें शुरू कीं ।

9.2 आगे बढ़ते हुए, विद्वान अधिवक्ता श्री खुराना इस न्यायालय को आई. बी. सी. के तहत प्रदान किए गए प्रत्येक प्रासंगिक प्रावधान, नियम और विनियमन के लिए ले जाते हैं, जो कॉर्पोरेट ऋणदाता (संक्षेप में "सी. डी". के रूप में संदर्भित) के लिए की जाने वाली दिवाला समाधान प्रक्रिया के उद्देश्यों के लिए आई. आर. पी./आर. पी. के अस्तित्व, निर्वाह और कार्यों के पूरे क्षेत्र को नियंत्रित करता है।

9.3 याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री खुराना ने धारा 2(19) और 5(27), अध्याय 2-आई. बी. सी. की कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया को उक्त पहलू को नियंत्रित करने वाले विनियमों के साथ संदर्भित करते हुए कहा है:-

क. दिवाला और दिवालियापन संहिता भारत में दिवाला और दिवालियापन के मामलों से निपटने के लिए एक विशेष कानून और अपने आप में एक पूर्ण संहिता है।

ख. राष्ट्रीय कंपनी विधि न्यायाधिकरण/न्यायनिर्णायक प्राधिकरण (एन. सी. एल. टी.) के पास नामित आई. आर. पी. को अस्वीकार करने की कोई शक्ति नहीं है जब तक कि आई. आर. पी. के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही न हो।

ग. आई. आर. पी. के कर्तव्य आई. बी. सी. के तहत गणना किए गए कर्तव्यों तक सीमित हैं। उन्हें केवल लेनदारों की समिति के निर्देशों का पालन करने की आवश्यकता होती है और उनके पास सी. ओ. सी. की मंजूरी के बिना कोई भी निर्णय लेने की शक्ति नहीं होती है। ये कर्तव्य केवल निगमित देनदार की दिवालियापन के प्रबंधन से संबंधित हैं न कि न्याय प्रशासन के किसी भी मुद्दे से।

घ. *आर्सेलर मित्तल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम सतीश कुमार गुप्ता और अन्य में रिपोर्ट किए गए (2019) 2 अन्य सी. सी. 1 स्विस रिबन्स प्राइवेट प्राइवेट लिमिटेड भारत संघ ने (2019) 4 एस. सी. सी. 17*, मामले पर भरोसा जताते हुए विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि आई. आर. पी./आर. पी. किसी भी बिंदु पर कोई

निर्णय या निर्धारण नहीं करता है और केवल सी. ओ. सी. के हितों के लिए एक प्रशासक या सहायक के रूप में कार्य करता है।

9.4 श्री खुराना भ्रष्टाचार अधिनियम और दिवाला एवं दिवालियापन संहिता के प्रावधानों के बीच परस्पर क्रिया की व्याख्या करते हैं और प्रस्तुत करते हैं कि पीसी अधिनियम, 1988 धारा 2(सी) के तहत लोक सेवक की एक विशेष परिभाषा प्रदान करता है। चूँकि आपराधिक कानूनों को सख्ती से पढ़ा जाना चाहिए और सभी अस्पष्टताओं को अभियुक्त के पक्ष में हल किया जाना चाहिए, इसलिए धारा 2(सी) के तहत सूचीबद्ध नहीं किए गए किसी भी व्यक्ति को लोक सेवक के रूप में शामिल किए जाने की कोई संभावना नहीं है।

9.5 पी. सी. अधिनियम की धारा 2 में 'दिवाला पेशेवर', 'अंतरिम समाधान पेशेवर' या 'समाधान पेशेवर' शब्द शामिल नहीं हैं। यह इस तथ्य के बावजूद है कि संसद ने 2016 में आई. बी. सी. की शुरुआत के 2 साल बाद 2018 में पी. सी. अधिनियम के कुछ प्रावधानों में संशोधन करने का फैसला किया।

9.6 विशेष रूप से, भा.दं.सं. की धारा 21 के तहत लोक सेवक की चौथी परिभाषा पी. सी. अधिनियम की धारा 2(ग)(V) के लगभग समान है और भा.दं.सं. की धारा 21 के तहत छठी परिभाषा पी. सी. अधिनियम की धारा 2 (ग) (V) के समान है। इसलिए, यदि कोई आई. आर. पी. धारा

21(चौथी और छठी) के अर्थ में लोक सेवक नहीं है, तो आई. आर. पी. अधिनियम की धारा 2(ग)(V) और धारा 2(ग) (V) के तहत लोक सेवक नहीं हो सकता है।

9.7 भ्रष्टाचार अधिनियम के तहत निहित परिभाषा खंडों की प्रयोज्यता को समझाते हुए, श्री खुराना ने आगे तर्क दिया कि आईआरपी या आरपी निम्नलिखित तर्कों के आधार पर भ्रष्टाचार अधिनियम की धारा 2 के तहत 'लोक सेवक' शब्द की परिभाषा के भीतर नहीं आएगा:-

क. आर. पी. की नियुक्ति पर लेनदारों की समिति (सी. ओ. सी.) का पूरा विवेक और नियंत्रण होता है। एन. सी. एल. टी. या डब्ल्यू. पी. (सी. आर.एल.) एन. सी. एल. ए. टी. के पास सी. ओ. सी. द्वारा आई. आर. पी. या आर. पी. की नियुक्ति या हटाने या प्रतिस्थापन में हस्तक्षेप करने की भी कोई शक्ति नहीं है। इसी तरह, आर. पी. को हटाने की शक्ति पूरी तरह से सी. ओ. सी. के पास निहित है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में धारा 2(ग) (vi) के तहत कोई भी मानदंड पूरा नहीं होता है।

ख. इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि आई. आर. पी. या आर. पी. "न्यायालय" द्वारा अधिकृत हैं। यह मानते हुए भी कि आई. आर. पी. या आर. पी. "न्यायालय" द्वारा अधिकृत हैं, आई. आर. पी. या आर. पी. "न्याय प्रशासन के संबंध में" कोई कर्तव्य नहीं निभा रहा है। धारा 2(ग)(V) में वे सभी व्यक्ति भी शामिल नहीं हैं जिन्हें न्यायालय द्वारा किसी भी कर्तव्य का पालन करने के लिए नियुक्त किया गया है। इसमें केवल वे व्यक्ति शामिल हैं जिन्हें

न्याय के प्रशासन के संबंध में किसी भी कर्तव्य का पालन करने के लिए नियुक्त किया जाता है।

ग. "पी.सी. अधिनियम की धारा 2(ख) के तहत परिभाषित सार्वजनिक कर्तव्य का अर्थ है एक ऐसा कर्तव्य जिसके निर्वहन में राज्य, जनता या बड़े पैमाने पर समुदाय का हित है।

घ. वर्तमान मामले में, आई. बी. सी. की धारा 18 और 25 के तहत प्रावधानों को पढ़ते समय, आई. आर. पी. या आर. पी. का कर्तव्य केवल लेनदारों की समिति और प्रबंधन के तहत कॉर्पोरेट ऋणदाता के प्रति है, न कि किसी अन्य व्यक्ति या बड़े पैमाने पर जनता के प्रति।

ड. इसलिए, यह स्पष्ट है कि आई. आर. पी. या आर. पी., पी. सी. अधिनियम की किसी भी पूर्वगामी धारा में शामिल नहीं है। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता का लोक सेवक के रूप में वर्गीकरण गलत है और पी. सी. अधिनियम के तहत उसका अभियोजन अवैध और अमान्य है और इसे अभिखंडित किया जाना चाहिए।

9.8 विद्वान अधिवक्ता श्री खुराना ने आगे तर्क दिया कि दिवाला और दिवालियापन संहिता एक विशेष कानून और अपने आप में एक पूर्ण संहिता है और इसमें आई. बी. सी. की धारा 232 के तहत एक कानूनी कल्पना है जिसमें कुछ व्यक्तियों को "लोक सेवक" माना गया है। हालांकि, एक आई. आर. पी. या एक आर. पी. को उक्त धारा के तहत लोक सेवक नहीं माना जाता है। इस तर्क को आगे बढ़ाते हुए, विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि संसद ने आई. बी. सी. के संदर्भ में भ्रष्टाचार

के प्रश्न पर विचार किया, जिससे धारा 232 आई. बी. सी. की शुरुआत हुई। विशेष रूप से, आई. आर. पी. या आर. पी. धारा 232 आई. बी. सी. में शामिल नहीं है। हालांकि, अगली धारा यानी धारा 233 आई. बी. सी. में, आई. आर. पी. या आर. पी. द्वारा सद्भावना से की गई कार्रवाइयों को संरक्षित किया गया है।

9.9 विद्वान अधिवक्ता आगे तर्क देते हैं कि यह एक स्थापित कानून है कि जिसका एक स्थान पर स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है लेकिन दूसरे में नहीं, उसे जानबूझकर हटा दिया गया है। वह प्रस्तुत करता है कि यह वैधानिक व्याख्या के तय किए गए नियम के अनुरूप है अर्थात् "एकल अभिव्यक्ति एक वैकल्पिक अपवाद है और इस प्रकार, धारा 232 का प्रयोग करते हुए, यह स्पष्ट है कि संसद ने आई. बी. सी. के तहत किसी भी व्यक्ति को लोक सेवक के रूप में नहीं माना है, लेकिन एक कानूनी कल्पना बनाई है कि धारा 232 के तहत व्यक्ति लोक सेवक होंगे, जिसमें कल्पना में आर. पी. या आई. आर. पी. शामिल नहीं है, जबकि **मनीष तिवारी बनाम राजस्थान राज्य** का निर्णय (2014) 14 एससीसी 420 में आई. बी. सी. के तहत किसी भी व्यक्ति को लोक सेवक नहीं माना जाता है।

9.10 श्री खुराना के अनुसार, यह अतिसामान्य है कि दिवाला एवं दिवालियापन संहिता अनुवर्ती और एक विशेष कानून है जब आई पी और

ऐसे व्यक्ति को दिए गए जिम्मेदारियों और कर्तव्यों की बात आती है और भ्रष्टाचार अधिनियम के प्रावधानों की अवहेलना करेगा, जो एक सामान्य अधिनियम है। केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (2009) 7 एससीसी 526 में रिपोर्ट किए गए, जीवन कुमार राउत बनाम भारत संघ के फैसले पर भरोसा करते हुए। उन्होंने आगे यह तर्क दिया है कि धारा 238 में कहा गया है कि आई. बी. सी. के प्रावधान किसी अन्य कानून में निहित कुछ भी असंगत होने के बावजूद प्रभावी होंगे। परिणामस्वरूप, लोक सेवकों के प्रावधान को आई. बी. सी. के तहत मानना पी. सी. अधिनियम के प्रावधानों की अवहेलना करेगा ।

9.11 वैकल्पिक रूप से, उनका तर्क है कि भले ही यह माना जाता है कि आई. बी. सी. और पी. सी. अधिनियम दोनों विशेष कानून हैं, आई. बी. सी. का उद्देश्य दिवालियापन से संबंधित सभी मामलों के संबंध में एक पूर्ण संहिता होना था। इसमें आई. आर. पी. और आर. पी. की स्थिति के निर्माण के साथ-साथ उन व्यक्तियों के नियम भी शामिल होंगे। आई. बी. सी. के तहत कुछ व्यक्तियों की सार्वजनिक प्रकृति के प्रति भी सचेत रहा है और उन्हें भा.दं.सं. के तहत लोक सेवक माना है। इसलिए, आई. बी. सी. के प्रावधानों को पी. सी. अधिनियम को अध्यारोही करना चाहिए। उनका तर्क है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी समय-समय पर कानूनों को निरस्त करने के सिद्धांत की पुष्टि की है (बाद वाला कानून

पहले के कानून पर प्रबल होगा)। इस नियम का एकमात्र अपवाद यह है कि बाद का सामान्य कानून स्वचालित रूप से पहले के विशेष कानून को अध्यारोही नहीं करेगा। हालाँकि, इस मामले में, आई. बी. सी. विशेष कानून है। *भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम पी. केशवन और अन्य में भरोसा जताया गया था*/(2004) 9 एस. सी. सी. 772 में सूचित किया गया।

9.12 अंत में, श्री खुराना, अपने तर्कों के पहले भाग को समाप्त करते हुए, दोहराते हैं कि आई. बी. सी. भा.दं.सं. सी. की धारा 21 के अर्थ के भीतर कुछ अधिकारियों (आई. आर. पी. या आर. पी. को छोड़कर) को शामिल करने के लिए एक काल्पनिक कल्पना बनाता है। इसका अनिवार्य रूप से तात्पर्य है कि लेकिन धारा 232 आई. बी. सी. के तहत काल्पनिक माने जाने वाले ये व्यक्ति भा.दं.सं. सी. की धारा 21 के अर्थ के तहत लोक सेवक नहीं होंगे और इसलिए, यह स्पष्ट है कि एक आईआरपी / आरपी धारा 21, आईपीसी या भ्रष्टाचार अधिनियम के अर्थ के भीतर "लोकसेवक" नहीं होगा।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री खुराना के तर्क का दूसरा अंग प्रत्यर्थी की ओर से स्पष्ट असद्भावी के आधार पर याचिकाकर्ता/आरोपी के खिलाफ प्राथमिकी की गैर-रखरखाव और प्रत्यर्थी/सी. बी. आई. द्वारा की गई आसन्न और स्पष्ट रूप से गलत जांच है।

11. अपने पूर्वोक्त तर्क को पुष्ट करने के लिए श्री खुराना निम्नलिखित तर्क देते हैं:-

क) यह सुझाव देने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि शिकायतकर्ता के खोखले दावे के अलावा याचिकाकर्ता द्वारा रिश्तत की कोई मांग की गई थी और यह स्पष्ट है कि यह प्राथमिकी शिकायतकर्ता द्वारा केवल कॉर्पोरेट ऋणदाता को धोखा देने के परिणामों से बचने के लिए दर्ज की गई है, विशेष रूप से यह शिकायत कि याचिकाकर्ता को दिनांकित 28.11.2020 बैठक के माध्यम से दायर करने के लिए अधिकृत किया गया था, और उसी से संबंधित कानूनी नोटिस शिकायतकर्ता को दिनांकित 07.01.2020 ई-मेल के माध्यम से भेजा गया था, जिसके बाद वर्तमान शिकायत प्रत्यर्थी/सीबीआई के साथ दर्ज की गई है।

ख) सी. बी. आई. नियमावली के अध्याय 8 के अनुरूप पूर्ण सत्यापन करने के स्पष्ट आदेश के बावजूद सी. बी. आई. शिकायतकर्ता के दावे को उचित रूप से सत्यापित करने में विफल रही। दिनांक 10.01.2020 पर किया गया सत्यापन याचिकाकर्ता की भूमिका का खुलासा करने में विफल रहा। सी. बी. आई. इस बात पर भी विचार करने में विफल रही है कि याचिकाकर्ता ने शिकायतकर्ता के मामले से संबंधित सभी जानकारी लेनदारों की समिति को दी थी। सी. बी. आई. इस बात पर विचार करने में विफल रही है कि शिकायतकर्ता का आचरण दुर्भावनापूर्ण है क्योंकि शिकायतकर्ता ने याचिकाकर्ता को नकली चालान और नकली सेवा समझौते प्रस्तुत किए हैं। शिकायतकर्ता याचिकाकर्ता द्वारा भेजे गए दिनांक 07.01.2020 के मांग नोटिस को सी. बी. आई. के ध्यान में लाने में विफल रहा।

ग) प्रत्यर्थी/सी. बी. आई. स्वीकार करता है कि याचिकाकर्ता की भूमिका में आगे के सत्यापन की आवश्यकता थी। दिनांक 11.01.2020 पर सत्यापन

में, यहां तक कि सीबीआई के अनुसार, याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई और सामग्री बरामद नहीं की गई थी। इसलिए, याचिकाकर्ता की भूमिका नहीं थी। सत्यापित, और उक्त प्राथमिकी इस तरह के अधूरे सत्यापन के आधार पर दर्ज नहीं की जानी चाहिए थी।

12. इसके अलावा, विद्वान अधिवक्ता श्री खुराना शिकायत के दर्ज होने पर भी सवाल उठाते हैं, जिसके आधार पर प्रत्यर्थी/सी. बी. आई. ने पूरी सत्यापन/जांच प्रक्रिया शुरू की थी, जो अपने आप में सी. बी. आई. नियमावली के प्रावधानों की बड़ी स्तर की अवहेलना और गैर-अनुपालन से ग्रस्त है जिसमें विशेष रूप से सी. बी. आई. द्वारा प्राप्त शिकायत की डायरी, संबंधित अधिकारी को उसी का विशिष्ट अंकन और ऐसी शिकायत के लिए आवंटित विशेष डायरी संख्या के आधार पर शिकायत का उचित अनुवर्ती कार्रवाई की आवश्यकता होती है।

13. श्री खुराना उन अंतर्निहित दोषों को इंगित करते हैं जिनके साथ सी. बी. आई. विचाराधीन शिकायत की जांच के साथ आगे बढ़ा है, और इस प्रकार, तर्क दिया है कि इस तरह के लाइलाज प्रक्रियात्मक दोषों से पीड़ित होने के कारण, शिकायत की बहुत सच्चाई सवाल में है और इस प्रकार, संदिग्ध सच्चाई और असद्भावी को इंगित करती है, और इस प्रकार, ऐसी जांच कानून की जांच में नहीं टिक सकती है।

14. विद्वान अधिवक्ता श्री खुराना ने अंत में तर्क दिया कि इसलिए, प्रत्यर्थी/शिकायतकर्ता ने विशुद्ध रूप से याचिकाकर्ता को परेशान करने और

प्रताड़ित करने और अपनी दुर्भावना को छिपाने के लिए आक्षेपित प्राथमिकी दर्ज की है और प्रस्तुत किया है कि इस प्राथमिकी को अभिखंडित करना, इसलिए, यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग न हो और न्यायाधीश के उद्देश्य सुरक्षित हों जबकि *हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल* मामले में भरोसा जताते हुए 1992 सप्लीमेंट (1) एस. सी. सी. 335 में रिपोर्ट किया गया।

प्रत्यर्थी/सी. बी. आई. की सामग्री:-

15. प्रत्यर्थी/सी. बी. आई. की ओर से पेश हुए विद्वान वि.लो.अभि. श्री प्रशांत वर्मा ने वर्तमान मामले पर सीधे तौर पर बहस करने की मांग की थी। और प्रस्तुत करता है कि याचिकाकर्ता द्वारा सभी प्रासंगिक दस्तावेजों को पहले ही अभिलेख पर रखा जा चुका है, और इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न विशुद्ध रूप से कानून का प्रश्न है।

16. श्री वर्मा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री खुराना द्वारा प्रस्तुत आई. आर. पी. के पूर्ण रेखाचित्र से अंतर करते हुए अपनी दलीलें शुरू करते हैं, इस हद तक कि आई. बी. सी. के तहत निहित आई. आर. पी. के कर्तव्यों को अनिवार्य रूप से पी. सी. अधिनियम के तहत प्रदान की गई "लोक सेवक" की परिभाषा के अनुरूप एक व्यापक "सार्वजनिक चरित्र" के "सार्वजनिक कर्तव्यों" के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

17. श्री वर्मा, विद्वान वि.लो.अभि प्रस्तुत करते हैं कि आई. बी. सी. एक नया कानून है और कॉर्पोरेट व्यक्तियों की दिवाला और दिवालियापन के मुद्दों के लिए विधिवत अधिनियमित एक नई अवधारणा है। उन्होंने आगे कहा कि पी. सी. में संशोधन किया गया था और पी. सी. अधिनियम की धारा 2(ग) का विस्तार बहुत व्यापक है, जिसमें व्यक्तियों द्वारा किए गए कर्तव्यों को शामिल किया गया है जिन्हें "लोक सेवक" कहा जाता है, हालांकि इसकी परिभाषा में आई. आर. पी./आर. पी. शब्द विशेष रूप से प्रदान नहीं किया गया था।

18. श्री वर्मा आगे तर्क देते हैं कि आई. आर. पी./आर. पी. एक ऐसा व्यक्ति है जिसे एन. सी. एल. टी. द्वारा विधिवत नियुक्त किया जाता है, भले ही वह लेनदार/निगमित देनदार/आवेदक द्वारा प्रस्तावित किया गया हो, और आई. आर. पी./आर. पी. द्वारा किए जाने वाले कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि वही "सार्वजनिक कर्तव्य" हैं जिनका "सार्वजनिक चरित्र" है। विद्वान वि.लो.अभि. ने आगे दिवाला एवं दिवालियापन संहिता की धारा 15 के आधार पर यह तर्क दिया, जो कॉर्पोरेट देनदार के लिए विधिवत नियुक्त आईआरपी द्वारा की जा रही "सार्वजनिक घोषणा" को संदर्भित करता है, बड़े पैमाने पर जनता को नोटिस देने के लिए, कॉर्पोरेट देनदार की स्थिति, और कॉर्पोरेट दिवालियापन समाधान प्रक्रिया के अनुसरण में कॉर्पोरेट देनदार के खिलाफ बड़े पैमाने पर लेनदारों के दावों को आमंत्रित करने के लिए, जो दिवाला एवं दिवालियापन संहिता के अनुसार वैधानिक विधि है।

19. श्री वर्मा, विद्वान वि.लो.अभि. आगे तर्क देते हैं कि आई. आर. पी./आर. पी. को निगमित ऋणी के प्रबंधन और मामलों की देखभाल करने की आवश्यकता होती है जिसके लिए उसे नियुक्त किया जाता है और यह भी सुनिश्चित करने की आवश्यकता होती है कि निगमित ऋणी के साथ सब कुछ सुचारु और कानूनी रूप से होना चाहिए।

20. श्री वर्मा ने आगे तर्क दिया कि आई. आर. पी./आर. पी. को दिए गए कर्तव्यों और जिम्मेदारियों से पता चलता है कि वह न्यायिक वितरण प्रणाली का एक हिस्सा हैं, जो न्यायिक व्यवस्था को आगे बढ़ाने के लिए काम कर रहे हैं, और इस प्रकार भा.दं.सं. और पी. सी. अधिनियम के तहत "लोक सेवक" की परिभाषा के तहत पूरी तरह से शामिल हैं।

21. जहाँ तक मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स का संबंध है, श्री वर्मा, विद्वान वि.लो.अभि. का तर्क है कि आई. आर. पी./आर. पी. के खिलाफ सी. बी. आई. द्वारा प्राप्त शिकायत की केवल जांच पर, यह प्रथमदृष्टया स्पष्ट था कि जिस व्यक्ति के खिलाफ आरोप लगाए गए हैं वह एक व्यक्ति है जिसे न्यायिक वितरण प्रणाली की प्रक्रिया के दौरान नियुक्त किया गया है। इसके अलावा, कि उक्त व्यक्ति वास्तव में उस विषय पर एक "न्यायालय" को रिपोर्ट करने के कर्तव्यों का पालन कर रहा है जिसने उसे नियुक्त किया था, और पैसे की मांग करने और कुछ फोन कॉल रिकॉर्ड करने के आरोपों ने सीबीआई को उक्त व्यक्ति के खिलाफ वर्तमान आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के लिए पर्याप्त कारण दिया।

22. उस आधार पर, विद्वान वि.लो.अभि. का तर्क है कि रिश्त मांगने का कार्य वास्तव में सार्वजनिक कर्तव्य के अनुसरण में किया गया था या नहीं, यह मुकदमे का विषय है, और इस प्रकार, इसे यहां उत्तेजित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि मामला अपने शुरुआती चरण में है।

23. श्री वर्मा, विद्वान वि.लो.अभि. ने झारखंड उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के रांची में 2021 के सीआरएमपी 1048 के फैसले पर बहुत भरोसा किया, जिसका शीर्षक संजय कुमार अग्रवाल बनाम भारत संघ था। केंद्रीय जांच ब्यूरो ने 2023 एससीसी ऑनलाइन झार 394 में रिपोर्ट दी, यह प्रस्तुत करने के लिए कि उक्त निर्णय स्पष्ट रूप से माना गया है कि समाधान पेशेवर "लोक सेवक" हैं जो भ्रष्टाचार अधिनियम की खंड 2 (सी) की परिभाषा के तहत आते हैं।

प्रत्यर्थी-2/शिकायतकर्ता की सामग्री

24. प्रत्यर्थी-2/शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राम निवास बुरी ने उपस्थिति दर्ज की और मामले पर बहस करने की अनुमति मांगी, जिसे विधिवत मंजूरी दी गई थी और उसके अनुसरण में, प्रत्यर्थी-2/शिकायतकर्ता की ओर से लिखित प्रस्तुतियाँ दायर की गई थीं, जिसमें वर्तमान याचिका पर कानूनी और तथ्यात्मक रूप से कड़ी आपत्ति जताई गई थी।

25. श्री बुरी, शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, आई. आर. पी./आर. पी. के पूरे क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले नियमों के साथ आई. बी. सी. के प्रासंगिक प्रावधानों द्वारा इस न्यायालय को लेकर फिर से अपनी दलीलें शुरू करते हैं। उनके कानूनी तर्कों का सारांश इस प्रकार है:-

क) न्यायिक रूप से निर्दिष्ट अर्थ को ध्यान में रखते हुए, "पद" शब्द इतना व्यापक है कि वैधानिक प्रावधानों के तहत विश्वास और सद्भावना से सौंपे गए सार्वजनिक कर्तव्यों के निर्वहन में किसी व्यक्ति द्वारा धारण की गई प्रत्येक क्षमता या पद को शामिल कर सकता है। विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आई. आर. पी. या आर. पी. के रूप में क्षमता या पद पर याचिकाकर्ता आई. बी. सी. 2016 और आई. बी. सी. विनियम, 2016 के तहत सार्वजनिक हित में वैधानिक कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है, जैसे कि वह आई. आर. पी. या आर. पी. का सार्वजनिक पद धारण कर रहा था।

ख) विद्वान अधिवक्ता आगे तर्क देते हैं कि पी. सी. अधिनियम, 1988 के तहत "कार्यालय", "सार्वजनिक कर्तव्य" और "लोक सेवक" के उपरोक्त अर्थ और परिभाषा और इसकी न्यायिक व्याख्या को देखते हुए, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि आई. बी. सी., के तहत आई. आर. पी. या आर. पी. 2016 आई. बी. सी., 2016 और आई. बी. सी. विनियम, 2016 के वैधानिक प्रावधानों के तहत विश्वास और सद्भावना से सौंपे गए सार्वजनिक कर्तव्यों का निर्वहन आदेश के लिए आई. आर. पी. या आर. पी. का पद धारण आदेश के आधार पर लोक सेवक के दायरे में आता है।

ग) इसके अलावा, पी. सी. की के अधिनियम, 1988 की धारा 2(ग) के स्पष्टीकरण-1 के आलोक में "चाहे सरकार द्वारा नियुक्त किया गया हो या

नहीं", यह मान लेना गलत और त्रुटिपूर्ण होगा कि केवल, आई. बी. सी. संहिता, 2016 की धारा 22के तहत सी. ओ. सी. द्वारा आर. पी. की नियुक्ति के आधार पर, याचिकाकर्ता पी. सी. अधिनियम, 1988 के तहत लोक सेवक की परिभाषा के तहत नहीं आता है। सादा पठन और "सरकार द्वारा नियुक्त या नहीं" शब्दों की समझ यह स्पष्ट करता है कि सरकार के अलावा अन्य द्वारा नियुक्त व्यक्ति भी लोक सेवक के दायरे में आता है, इसलिए सी. ओ. सी. द्वारा नियुक्त याचिकाकर्ता पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 2(ग) के स्पष्टीकरण-1 के अनुसार एक लोक सेवक है।

घ) बहुमत के साथ सी. ओ. सी. केवल निर्णायक प्राधिकरण (एन. सी. एल. टी.) को आई. आर. पी. या आर. पी. के प्रतिस्थापन का प्रस्ताव और सिफारिश कर सकता है और यह केवल एन. सी. एल. टी. है जो आई. बी. बी. आई. से किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही विचाराधीनता होने के संबंध में रिपोर्ट मांगने के बाद आई. आर. पी. या आर. पी. की नियुक्ति या प्रतिस्थापन करता है, इसलिए, आई. आर. पी. या आर. पी. का कार्यालय वैधानिक रूप से स्थायी प्रकृति का है और सार्वजनिक प्राधिकरण यानी एन. सी. एल. टी. और आई. बी. बी. आई. से जुड़ा हुआ है। आई. आर. पी. या आर. पी. आई. बी. सी., 2016 और आई. बी. सी. विनियम, 2016 के प्रावधानों के तहत बड़े पैमाने पर समुदाय के सार्वजनिक हित में सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए महत्वपूर्ण स्थिति रखता है।

ड) आई. बी. सी., 2016 की योजना से यह स्पष्ट होता है कि एक आई. आर. पी. या आर. पी. अनिवार्य रूप से आई. बी. बी. आई. के अलावा सी. ओ. सी. और एन. सी. एल. टी. को अपने कार्यों और निर्णयों की रिपोर्ट करने के लिए बाध्य है। समाधान प्रक्रिया में किसी भी विवाद के

मामले में, आर. पी. अपनी प्रस्तावित कार्रवाई के संबंध में एन. सी. एल. टी. से आदेश प्राप्त करने के लिए भी बाध्य है।

च) इसके अलावा, आर. पी. को आई. बी. सी. विनियम, 2016 के विनियम 7 के संदर्भ में शर्तों के साथ पंजीकरण का प्रमाण पत्र जारी किया जाता है और विनियम 11 के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही के अधीन है। आई. बी. सी. आई. अनुशासनात्मक समिति की सिफारिश के अनुसरण में या अन्यथा आई. आर. पी. या आर. पी. को कार्रवाई कर सकता है या दंडित कर सकता है जैसा कि धारा 220 आई. बी. सी., 2016 के तहत प्रदान किया गया है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि आर.पी एक पद रखता है और एन.सी.एल.टी के निर्णायक नियंत्रण के तहत एन.सी.एल.टी को उपचार और सहायता में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करता है। आर.पी को आई.बी.सी, 2016, आई.बी.बी.आई विनियम, 2016, आई.बी.बी.आई द्वारा जारी दिशानिर्देशों और आई.बी.बी.आई द्वारा समय-समय पर जारी किसी अन्य आदेश या परिपत्र के प्रावधानों का पालन करने के लिए अनिवार्य किया गया है। इसलिए, सी.आई.आर.पी के दौरान आर.पी के कर्तव्यों, कार्यों, कदमों और निर्णयों को आई.बी.सी, 2016 और आई.बी.सी विनियम, 2016 के प्रावधानों के तहत विनियमित और नियंत्रित किया जाता है, इसलिए ये प्रकृति में सार्वजनिक हैं।

छ) दिवाला पेशेवर या परिसमापक द्वारा किया गया या करने का इरादा रखने वाला कोई भी कार्य या कमीशन जो आई. बी. सी., 2016 या उसके तहत बनाए गए नियमों या विनियमों के तहत नहीं आता है, अपनी प्रकृति से, पी. सी. अधिनियम या भा.दं.सं. सी. के तहत दंडनीय अपराध के समान है, क्योंकि आई. आर. पी. या आर. पी. या परिसमापक या दिवालियापन न्यासी आई. बी. सी., 2016 की धारा 233 के तहत संरक्षित नहीं है।

ज) जहां तक आई. बी. सी., 2016 की धारा 232, में असंदर्भित एक दिवाला पेशेवर या परिसमापक का संबंध है, यह विधायिका की एक अनपेक्षित चूक प्रतीत होती है, लेकिन आई. बी. सी., 2016 के तहत एक दिवाला पेशेवर (आई. आर. पी. या आर. पी.) या परिसमापक के कर्तव्यों, जिम्मेदारियों, जवाबदेही और कार्यालय की प्रकृति से निहितार्थ, पूर्वदृष्टया दर्शाता है और साबित करता है कि आई. बी. सी., 2016 के तहत एक दिवाला पेशेवर (आई. आर. पी. या आर. पी.) या परिसमापक एक लोक सेवक है।

झ) विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि यह माननीय न्यायालय आई.बी.सी, 2016 की धारा 232, में अंतर को भरने के लिए अधिकृत है; सबसे पहले, धारा 233, दिवाला एवं दिवालियापन संहिता, 2016 के तहत एक दिवाला पेशेवर (आई.आर.पी या आर.पी) या परिसमापक को दी गई सुरक्षा को देखते हुए; दूसरा, इस तथ्य के आलोक में कि पी.सी अधिनियम, 1988 या आई.बी.सी, 2016 में कोई विशिष्ट वैधानिक प्रावधान नहीं है जो यह निर्धारित करता है कि आई.बी.सी, 2016 के तहत एक दिवाला पेशेवर (आई.आर.पी या आर.पी) या परिसमापक एक "लोक सेवक" नहीं है और तीसरा, आई.आर.पी या आर.पी के कार्यालय का लाभ उठाकर धमकी, दबाव और जबरदस्ती के तहत सी.आई.आर.पी के दौरान धन की जबरन वसूली का कार्य और कमीशन, आई.बी.सी, 2016 के प्रावधानों के दायरे से बाहर है और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 और भा.दं.सं. के अंतर्गत आता है।

26. जहाँ तक वर्तमान याचिका में उठाई गई तथ्यात्मक दलीलें हैं, प्रत्यर्थी-2/शिकायतकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ इस प्रकार हैं:-

- क) प्रत्यर्थी-2/शिकायतकर्ता आई. आई. टी. दिल्ली से एम. टेक है और उसकी पत्नी भी डी. आर. डी. ओ. में अनुभव के साथ एम. सी. ए. है, इस प्रकार, प्रत्यर्थी-2 और उसकी पत्नी दोनों को सी. डी. के आवश्यक काम के उद्देश्य से अच्छा ज्ञान और अनुभव है, इसलिए, उन्हें मार्च, 2017 में सी. डी. द्वारा सलाहकार के रूप में नियुक्त किया गया था। प्रत्यर्थी-2 और उनकी पत्नी ने मार्च, 2017 से नवंबर, 2017 तक सीडी के लिए काम किया और उन्हें अपने काम/सेवाओं के लिए 15.20 लाख रुपये का भुगतान प्राप्त हुआ। 18 लाख रुपए के दावे के बदले सीडी द्वारा टीडीएस सहित 2.8 लाख रुपए की राशि बकाया थी।
- ख) सी. डी. को एक वित्तीय लेनदार (एफ. सी.) द्वारा एन. सी. एल. टी., मुंबई में कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया (सी. आई. आर. पी.) के लिए आगे बढ़ाया गया था और याचिकाकर्ता को सी. पी. No 2891/1&BC 2019 में एन. सी. एल. टी., मुंबई के दिनांकित 14.11.2019 आदेश के अनुसार अंतरिम समाधान पेशेवर (आई. आर. पी.) नियुक्त किया गया था।
- ग) याचिकाकर्ता एक अधिवक्ता है जिसके पास अन्य पेशेवर डिग्री के अलावा विधि में पीएचडी है और आई. बी. सी. की धारा 207 और आई. बी. सी. (दिवाला पेशेवर) विनियम, 2016 के विनियम 7 के संदर्भ में आई. बी. बी. आई. के साथ पंजीकृत है।
- घ) याचिकाकर्ता ने सीडी का प्रभार संभाला और दिनांक 14.12.2019 एवं 16.12.2019 के ई-मेल के द्वारा प्रत्यर्थी-2 की पत्नी के दावे के समर्थन में जानकारी और दस्तावेज मांगे जो याचिकाकर्ता को पहले से ही सीडी के द्वारा प्रदान किए गए थे। याचिकाकर्ता ने गोपनीयता समझौते में तारीख दर्ज करने में अनियमितता/असंगति पाई और उक्त एकमात्र कारण के

लिए गोपनीयता समझौते और प्र-2 और उसकी पत्नी के पूरे काम/सेवाओं को धोखाधड़ी करार दिया और प्र-2 की पत्नी के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही शुरू करने की धमकी दी।

ड) याचिकाकर्ता ने सह-आरोपी परेश कुमार के साथ मिलकर प्रत्यर्थी-2 से पैसे ऐंठने की साजिश रची और मामले को दबाने के लिए 5 लाख रुपये की राशि की मांग की। याचिकाकर्ता और सह-अभियुक्त परेश कुमार ने परेश कुमार के कार्यालय में प्रत्यर्थी-2 के साथ संयुक्त बैठक में प्रत्यर्थी-2 की पत्नी के खिलाफ आपराधिक कार्रवाई की धमकी, विबाध्यता देकर स्पष्ट रूप से 5 लाख रुपये की राशि की मांग की एवं यदि 5 लाख रुपये की रिश्त का भुगतान नहीं किया जाता है तो 15.20 लाख रुपये की ब्याज के साथ वसूली की धमकी दी। याचिकाकर्ता और सह-अभियुक्त परेश कुमार ने -2 को आश्वासन दिया कि 5 लाख रुपये के भुगतान पर प्रत्यर्थी-2 की पत्नी के खिलाफ कोई आपराधिक कार्रवाई शुरू नहीं की जाएगी क्योंकि याचिकाकर्ता अंत तक पूरे मामले का प्रबंधन करना जारी रखेगा। तीनों की यह पूरी बातचीत के साथ-साथ याचिकाकर्ता और सह-अभियुक्त के बीच की बातचीत अभियोजन पक्ष के मामले का हिस्सा है।

च) सह-अभियुक्त परेश कुमार को प्रत्यर्थी-2/शिकायतकर्ता से 3.5 लाख रुपये की रिश्त लेते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया था।

27. उपरोक्त प्रस्तुतियों के आधार पर, प्रत्यर्थी-2/शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री बुरी अंत में तर्क देते हैं कि सह-अभियुक्त परेश कुमार ने याचिकाकर्ता के कहने पर रिश्त की राशि स्वीकार कर ली। श्री बुरी आगे प्रस्तुत करते हैं कि आई. आर. पी./आर. पी. के रूप में सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन करते हुए अपने पद का अनुचित लाभ उठाने और विबाध्यता,

जबरदस्ती और आपराधिक कार्यवाही शुरू करने की धमकी के तहत धन उगाही करने के कार्य और आयोग आई. बी. सी., 2016 के दायरे से बाहर हैं और विशेष रूप से पी. सी. अधिनियम, 1988 और भा.दं.सं. के दायरे में आते हैं।

याचिकाकर्ता की ओर से खंडन

28. श्री खुराना ने खंडन करते हुए कहा कि "दिवाला पेशेवर" का धारा 232 आई. बी. सी. में कोई उल्लेख नहीं है, हालांकि, धारा 232 के तुरंत बाद की धारा में, यानी धारा 233 आई. बी. सी. में, "दिवाला पेशेवर" का उल्लेख किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विधानमंडल ने अपने विवेक में जानबूझकर दिवाला पेशेवरों को धारा 232 आई. बी. सी. में शामिल नहीं किया है। इसके अलावा, धारा 238 आई. बी. सी. के आधार पर, आई. बी. सी. के प्रावधान किसी भी अन्य कानून पर प्रबल होंगे।

29. उन्होंने आगे कहा कि संसद ने 2016 में दिवाला एवं दिवालियापन संहिता की शुरुआत के 2 साल बाद 2018 में भ्रष्टाचार अधिनियम के प्रावधानों में संशोधन करने का फैसला किया, फिर भी भ्रष्टाचार अधिनियम के तहत लोक सेवकों के रूप में दिवाला एवं दिवालियापन संहिता के तहत एक अंतरिम समाधान पेशेवर या एक समाधान पेशेवर या किसी अन्य व्यक्ति / अधिकारियों को शामिल करने के लिए कोई संशोधन नहीं किया गया था।

30. वह यह भी प्रस्तुत करता है कि एक समाधान पेशेवर एक लोक सेवक नहीं है जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि जहां आर. पी. को एक लोक सेवक के रूप में माना जाना है, विधानमंडल ने स्पष्ट रूप से इसके लिए प्रावधान किया है। **भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड (प्रशासक की नियुक्ति और धनवापसी के लिए प्रक्रिया निवेशक) विनियम, 2018** पर भरोसा जताया गया है। उसने विनियमन 5 के उप-विनियमों (1) और (5) पर भरोसा जताया है जो नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"5. (1) प्रशासक भारतीय दिवाला और दिवालियापन बोर्ड में दिवाला समाधान पेशेवर के रूप में पंजीकृत व्यक्ति होगा और समय-समय पर बोर्ड द्वारा सूचीबद्ध किया जाएगा।

(5) इन विनियमों के प्रयोजनों के लिए, प्रशासक को भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ के भीतर एक लोक सेवक माना जाएगा और अधिनियम की धारा 22 और 23 तदनुसार उस पर लागू होंगी।"

इसलिए, जैसा कि आई. बी. सी. की धारा 232, में एक दिवाला पेशेवर शामिल नहीं है, यह स्पष्ट है कि विधानमंडल का कभी भी एक दिवाला पेशेवर को "लोक सेवक" बनाने का इरादा नहीं था।

31. अपनी दलीलों के समर्थन में उन्होंने **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो बनाम रमेश गेली और अन्य** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के रिपोर्ट किए गए (2016) 3 एस. सी. सी. 788 निर्णय पर भी भरोसा किया।

32. वे प्रस्तुत करते हैं कि रांची में झारखंड उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा **संजय कुमार अग्रवाल (उपरोक्त)** मामले के पैरा 27 में दिया गया तर्क, कि धारा 232 केवल भा.दं.सं. के संबंध में है और पी. सी. अधिनियम के संबंध में नहीं है और इसलिए आई .पी पी. सी. अधिनियम की धारा 2 (ग) के अंतर्गत आएगा एवं इसको **रमेश गेली (उपरोक्त)** में अनुपात को ध्यान में रखते हुए कानून की सही व्याख्या नहीं माना जा सकता है।

आई.बी.बी.आई. की टिप्पणियां

33. श्री नीरज मल्होत्रा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता आईबीबीआई की ओर से पेश होते हैं और प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता की ओर से उठाई गई दलीलों के खिलाफ बोर्ड को शुरू में कुछ आपत्तियां थीं। हालांकि, इंटररेग्नम में संजय कुमार अग्रवाल के मामले (सुप्रा) में निर्णय पारित होने के बाद से, इस न्यायालय के समक्ष समान कानूनी मुद्दे पर कानूनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए, अब यह प्रस्तुत करता है कि बोर्ड कानून का पालन करेगा जैसा कि यह आज है।

विश्लेषण और निष्कर्ष:

34. इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री खुराना, सी. बी. आई. के विद्वान वि. लो.अभि. श्री प्रशांत वर्मा और प्रत्यर्थी-2/शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राम निवास बुरी के साथ-साथ आई. बी. बी. आई. के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नीरज मल्होत्रा की दलील सुनी है। उनकी समर्थ

सहायता से, इस न्यायालय ने अभिलेख पर दस्तावेजों के साथ-साथ वर्तमान याचिका में विचार के लिए उत्पन्न विभिन्न अधिनियमों के विभिन्न प्रावधानों का भी अध्ययन किया है।

35. दिनांक 12.02.2021 के आदेश के माध्यम से, इस न्यायालय ने प्रश्न तैयार किया था, जिस पर विचार करने की आवश्यकता थी जो निम्नानुसार है:-

“वर्तमान याचिका में शामिल मुद्दा यह है कि क्या याचिकाकर्ता जो एक 'समाधान पेशेवर' है, एक लोक सेवक है या नहीं और इस प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध के लिए उत्तरदायी होगा।”

वर्तमान याचिका में उत्पन्न होने वाले विभिन्न कानूनी पहलुओं को सुनने और उन पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि उपरोक्त प्रश्न को दिवाला पेशेवर को एक वर्ग के रूप में ध्यान में रखते हुए देखा जाना चाहिए, न कि आईआरपी, आरपी और लिक्विडेटर को अलग-अलग संस्थाओं के रूप में।

36. वर्तमान मामले में शामिल विवाद विशुद्ध रूप से कानून का प्रश्न है और इस न्यायालय से आई. बी. सी., 2016 के विभिन्न प्रावधानों के तहत आई. पी. की भूमिका और जिम्मेदारी से संबंधित अन्य प्रावधानों के साथ धारा 232 और 233, आई. बी. सी. की व्याख्या करने की आवश्यकता है। धारा 232 और धारा 233 आई. बी. सी. को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा:

"232. बोर्ड के सदस्य, अधिकारी और कर्मचारी जनता के लिए लोक सेवक। — बोर्ड के अध्यक्ष, सदस्य, अधिकारी और अन्य कर्मचारी, जब इस संहिता के किसी भी प्रावधान के अनुसरण में कार्य करते हैं या कार्य करने का इरादा रखते हैं, तो उन्हें भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ के भीतर लोक सेवक माना जाएगा।

233. सद्भावना से की गई कार्रवाई का संरक्षण।— न कोई मुकदमा, अभियोजन या अन्य कानूनी कार्यवाही सरकार या सरकार के किसी अधिकारी, या अध्यक्ष, सदस्य, अधिकारी या बोर्ड के अन्य कर्मचारी या किसी दिवालिया पेशेवर या परिसमापक के खिलाफ किसी भी ऐसी चीज के लिए होगी जो इस संहिता या उसके तहत बनाए गए नियमों या विनियमों के तहत सद्भावना से की गई है या करने का इरादा है।"

यह अच्छी तरह से तय है कि कानूनों की व्याख्या का सुनहरा नियम विशेष प्रावधान को उसकी सरल और सरल भाषा में पढ़ना है और जब तक कोई अस्पष्टता या स्पष्टता की कमी न हो, तब तक आंतरिक या बाहरी तरीकों की सहायता लेने का अभ्यास सामान्य रूप से नहीं किया जाना चाहिए।

37. इस न्यायालय के इस पहलू पर विचार करने से पहले कि क्या आई. पी. पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 2 (ग) में उल्लिखित अर्थ के भीतर एक "लोक सेवक" है, इस पर विचार करना उचित होगा कि किन कारणों और उद्देश्यों के कारण विधानमंडल को विभिन्न दिवाला अधिनियमों जैसे प्रेसीडेंसी टाउन दिवाला अधिनियम, 1909, प्रांतीय दिवाला अधिनियम, 1920, बीमार

औद्योगिक कंपनियों (विशेष डब्ल्यू. पी. (सी. आर. एल.) प्रावधान) अधिनियम, 1985 (एस. आई. सी. ए.), बैंकों और वित्तीय संस्थानों के कारण ऋण की वसूली अधिनियम, 1993 और वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और प्रतिभूति ब्याज प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (एस. ए. आर. एफ. ए. ई. एस. आई. अधिनियम) को दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 में समेकित करने की आवश्यकता महसूस की गई। आई. बी. सी. 2016 में उल्लिखित उपरोक्त कानूनों के संहिताकरण की आवश्यकता वाले उद्देश्यों और कारणों का परिचय और विवरण नीचे दिया गया है:-

“दिवाला और दिवालियापन समाधान के लिए मौजूदा ढांचा अपर्याप्त, अप्रभावी है और इसके परिणामस्वरूप अनुचित देरी होती है।

दिवाला और दिवालियापन कानूनों के समेकन की सिफारिश करने वाली कई समितियाँ और आयोग हैं। नवंबर, 2015 में, दिवालियापन कानून सुधार समिति ने दिवाला और दिवालियापन संहिता की सिफारिश की। इसे दिसंबर, 2015 में संसद में पेश किया गया था।

संहिता का उद्देश्य दिवाला और दिवालियापन से संबंधित कानूनों को समेकित और संशोधित करना है। संहिता 1909 और 1920 के दो दिवाला अधिनियमों को निरस्त करती है और कई अधिनियमों में संशोधन करती है।

संहिता का उद्देश्य निवेश को बढ़ावा देने के साथ-साथ निगमित व्यक्तियों, फर्मों और व्यक्तियों की दिवालियापन का समयबद्ध

तरीके से समाधान करना है। इसमें एन. सी. एल. टी. और डी. आर. टी. को न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के रूप में नामित करने का प्रावधान है। संहिता दिवाला और दिवालियापन की कार्यवाही के वाणिज्यिक पहलुओं को न्यायिक पहलुओं से अलग करती है। यह दिवाला पेशेवरों, दिवाला पेशेवर एजेंसियों और सूचना उपयोगिताओं के विनियमन के लिए भारतीय दिवाला और दिवालियापन बोर्ड (बोर्ड) की स्थापना का भी प्रावधान करता है।

उद्देश्यों और कारणों का विवरण

भारत में दिवाला और दिवालियापन से संबंधित कोई भी कानून नहीं है। कंपनियों के लिए दिवाला और दिवालियापन से संबंधित प्रावधान रूग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985, बैंकों और वित्तीय संस्थान अधिनियम, 1993 के कारण ऋण की वसूली, वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और प्रतिभूति ब्याज अधिनियम, 2002 और कंपनी अधिनियम, 2013 में पाए जा सकते हैं। इन कानूनों में औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बी. आई. एफ. आर.), ऋण वसूली अधिकरण (डी. आर. टी.) और राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण (एन.सी.एल.टी.) और उनके संबंधित अपीलीय न्यायालय में निर्माण के एकाधिक मंच हैं। कंपनियों का परिसमापन उच्च न्यायालयों द्वारा किया जाता है। व्यक्तिगत दिवालियापन और दिवालियापन से प्रेसीडेंसी टाउन दिवालियापन अधिनियम, 1909 और प्रांतीय दिवालियापन अधिनियम, 1920 के तहत निपटा जाता है और अदालतों द्वारा निपटा जाता है। दिवालियापन और दिवालियापन के लिए मौजूदा ढांचा अपर्याप्त,

अप्रभावी हैं और इसके परिणामस्वरूप समाधान में अनुचित देरी होती है, इसलिए, प्रस्तावित कानून।

2. दिवाला और दिवालियापन, 2015 का उद्देश्य निगमित व्यक्तियों, साझेदारी फर्मों और व्यक्तियों के पुनर्गठन और दिवालियापन समाधान से संबंधित कानूनों को समयबद्ध तरीके से समेकित और संशोधित करना है ताकि ऐसे व्यक्ति की परिसंपत्तियों के मूल्य को अधिकतम किया जा सके, उद्यमिता को बढ़ावा दिया जा सके, ऋण की उपलब्धता और सरकारी बकाया के भुगतान की प्राथमिकता में परिवर्तन सहित सभी हितधारकों के हितों को संतुलित किया जा सके और एक दिवाला और दिवालियापन कोष की स्थापना की जा सके और इससे जुड़े या उससे जुड़े मामले। दिवाला और दिवालियापन के समय पर समाधान के लिए एक प्रभावी कानूनी ढांचा ऋण बाजारों के विकास में सहायता करेगा और उद्यमिता को प्रोत्साहित करेगा। यह व्यवसाय करने की सुगमता में भी सुधार करेगा और अधिक निवेश की सुविधा प्रदान करेगा जिससे उच्च आर्थिक वृद्धि और विकास होगा।

3. संहिता एन. सी. एल. टी. और डी. आर. आई. को दिवाला, परिसमापन और दिवालियापन के समाधान के लिए क्रमशः निगमित व्यक्तियों और फर्मों और व्यक्तियों के लिए न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के रूप में नामित करने का प्रावधान करती है। संहिता दिवाला और दिवालियापन की कार्यवाही के वाणिज्यिक पहलुओं को न्यायिक पहलुओं से अलग करती है। संहिता दिवाला पेशेवरों, दिवाला पेशेवर एजेंसियों और सूचना उपयोगिताओं के विनियमन के लिए भारतीय दिवाला और

दिवालियापन बोर्ड (बोर्ड) की स्थापना का भी प्रावधान करती है। बोर्ड की स्थापना होने तक, केंद्र सरकार बोर्ड की सभी शक्तियों का प्रयोग करेगी या बोर्ड की शक्तियों और कार्यों का प्रयोग करने के लिए किसी भी वित्तीय क्षेत्र के नियामक को नामित करेगी। दिवाला पेशेवर संहिता में परिकल्पित दिवाला समाधान, परिसमापन और दिवालियापन कार्यवाही को पूरा करने में सहायता करेंगे। सूचना उपयोगिताएँ इस तरह की कार्यवाही को सुविधाजनक बनाने के लिए वित्तीय जानकारी एकत्रित करेंगी, प्रमाणित करेंगी और प्रसारित करेंगी। संहिता में निर्दिष्ट उद्देश्यों के लिए भारतीय दिवाला और दिवालियापन कोष नामक एक कोष स्थापित करने का भी प्रस्ताव है।

4. संहिता में भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932, केंद्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944, सीमा शुल्क अधिनियम, 1962, आयकर अधिनियम, 1961, बैंकों और वित्तीय संस्थानों के देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993, वित्त अधिनियम, 1994, वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण में संशोधन का प्रावधान है। प्रतिभूति ब्याज अधिनियम, 2002 का प्रवर्तन, रूग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) निरसन अधिनियम, 2003, भुगतान और निपटान प्रणाली अधिनियम, 2007, सीमित देयता भागीदारी अधिनियम, 2008 और कंपनी अधिनियम, 2013 में संशोधन प्रदान करने का प्रयास करती है।

5. संहिता उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करती है।

2016 का अधिनियम 31

संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित दिवाला और दिवालियापन संहिता विधेयक को 28 मई, 2016 को राष्ट्रपति की मंजूरी मिल गई। यह अधिनियम पुस्तक में द इनसॉल्वेंसी एंड बैंकरप्टसी कोड, 2016 (2016 का 31) के रूप में आया।”

आई. बी. सी. की प्रस्तावना को ध्यान में रखना भी प्रासंगिक होगा, जो यहाँ नीचे दी गई है:-

“कार्पोरेट व्यक्तियों, साझेदारी फर्मों और व्यक्तियों के पुनर्गठन और दिवाला समाधान से संबंधित कानूनों को समयबद्ध तरीके से समेकित और संशोधित करने के लिए एक अधिनियम, ताकि ऐसे व्यक्तियों की परिसंपत्तियों के मूल्य को अधिकतम किया जा सके, उद्यमशीलता को बढ़ावा दिया जा सके, ऋण की उपलब्धता और सभी हितधारकों के हितों को संतुलित किया जा सके जिसमें सरकारी देनदारियों के भुगतान की प्राथमिकता के क्रम में परिवर्तन शामिल हो और भारतीय दिवाला और दिवालियापन बोर्ड की स्थापना की जा सके। और उससे जुड़े या उसके आनुषंगिक मामले”

यह स्पष्ट है कि दिवाला कानूनों में देरी और लंबे परीक्षणों, वित्तीय संस्थानों के कारण ऋणों की वसूली, रुग्ण उद्योगों या कंपनियों के पुनरुद्धार या परिसमापन से संबंधित मामलों के कारण उक्त विषय पर पिछले कानूनों का संहिताकरण आवश्यक था।

38. आई. बी. सी. की धारा 232 की व्याख्या शुरू करने से पहले आई. पी. से संबंधित आई. बी. सी. के विभिन्न प्रावधानों की संक्षिप्त रूप से जांच करना भी प्रासंगिक होगा और यह भी कि क्या आई. पी. एक "लोक सेवक" हो सकता है। आई. बी. सी. के एक सामान्य अवलोकन पर, ऐसा प्रतीत होता है कि आई. पी.

को विभिन्न भूमिकाएं, जिम्मेदारियां और कर्तव्य दिए गए हैं जो एन. सी. एल. टी. को या तो एक समाधान योजना को मंजूरी देकर एक कॉर्पोरेट ऋणदाता को पुनर्जीवित करने या इसे अंतिम उपाय के रूप में समाप्त करने में सहायता करेंगे। आई. बी. सी. की धारा 18, 20 और 25 आई. पी. के विभिन्न कर्तव्यों और कार्यों को संदर्भित करता है जो प्रबंधन के स्थान पर कदम रखते हुए सी. डी. को संरक्षित करने, सी. डी. के उचित प्रबंधन के उद्देश्यों के लिए यदि आवश्यक हो तो एजेंसियों की नियुक्ति करने और इसके मामलों के प्रबंधन तक विस्तारित होंगे। धारा 20 और 25 आई. पी. को सी. डी. की ओर से अनुबंध करने या लंबित अनुबंधों में संशोधन या संशोधन करने का अधिकार प्रदान करती है; संहिता की धारा 28 के अधीन अंतरिम वित्त जुटाना; लेखाकार, कानूनी या अन्य पेशेवरों की नियुक्ति के अलावा सी. डी. को "चालू व्यवसाय " के रूप में रखने के लिए उपयुक्त निर्देश जारी करना जो आवश्यक हो। आई. बी. सी. के तहत आई. पी. की यह भी जिम्मेदारी है कि वह सी. डी. के निरंतर व्यावसायिक संचालन सहित सी. डी. की परिसंपत्तियों को संरक्षित और संरक्षित करे। इस बिंदु पर जिस बात पर विचार किया जाना प्रासंगिक है, वह यह है कि आई. बी. सी. ने कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 429(1) में संशोधन किया है, जो एन. सी. एल. टी. को परिसंपत्तियों का नियंत्रण और अभिरक्षा लेने के लिए निष्पादक अधिकारियों को निर्देश पारित करने का अधिकार देता है, यदि आई. पी. को ऐसा करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। धारा 28 एक प्रासंगिक प्रावधान है जो लेनदारों की समिति (सी. ओ. सी.) के अनुमोदन

के अधीन ऊपर उल्लिखित आई. पी. के कुछ अधिकारों और कर्तव्यों को प्रतिबंधित और कम करता है।

39. आई. बी. सी. की धारा 21 आई. पी. द्वारा सी. ओ. सी. के गठन को अनिवार्य करती है, जो सी. डी. के अंतिम परिणाम पर निर्णय लेती है अर्थात् दिवालियापन का समाधान करना हो या सीडी का परिसमापन करना हो। धारा 23 के अनुसार, आई. पी. मध्यावधि के दौरान कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया का संचालन करेगा जब तक कि सी. डी. के भाग्य के संबंध में अंतिम निर्णय नहीं हो जाता।

"सार्वजनिक कर्तव्य", "सार्वजनिक चरित्र" और "सार्वजनिक सेवक" को ध्यान में रखते हुए मुद्दा"।

40. विद्वान वि.लो.अभि. और प्रत्यर्थी संख्या 2/शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भी बहुत तर्क दिया गया था कि आई. बी. सी. द्वारा प्रदत्त और आई. पी. पर निहित कर्तव्य और जिम्मेदारियां, "सार्वजनिक चरित्र" की प्रकृति में "सार्वजनिक कर्तव्य" हैं जो आई. पी. के चरित्र को "लोक सेवक" के रूप में दर्शाते हैं।

41. तथापि, इससे पहले कि यह न्यायालय इन तर्कों पर विचार करे, स्विस रिबन प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ मामले में (2019) 4 एससीसी 17 और आर्सेलर मित्तल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम सतीश कुमार गुप्ता और अन्य (2019) 2 एससीसी 1 में प्रतिवेदित माननीय उच्चतम

न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर विचार करना उचित होगा जिससे, दिवाला एवं दिवालियापन संहिता द्वारा आरपी को कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को प्रदान करने वाले विभिन्न प्रावधानों की विस्तार से जांच करने के बाद, यह स्पष्ट रूप से माना गया था कि आरपी केवल एक "सुविधा प्रदाता" है।

उपरोक्त निर्णयों के प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार हैं:-

"(1) स्विस रिबन:-

89. सी.आई.आर.पी. विनियमों के तहत, समाधान पेशेवर को किए गए दावों की जांच और सत्यापन करना होता है, और अंततः, प्रत्येक दावे की राशि निम्नानुसार निर्धारित करनी होती है:

"10. दावों का सार — अंतरिम समाधान पेशेवर या समाधान पेशेवर, जैसा भी मामला हो, अपने दावे के पूरे या हिस्से को साबित करने के लिए किसी लेनदार से ऐसे अन्य साक्ष्य या स्पष्टीकरण की मांग कर सकता है जो वह उचित समझे।

* * * *

12. दावों का प्रमाण प्रस्तुत करना। —(1) उप विनियम (2) के अधीन, एक लेनदार सार्वजनिक घोषणा में उल्लिखित अंतिम तिथि को या उससे पहले सबूत के साथ दावा प्रस्तुत करेगा।

(2) एक लेनदार, जो सार्वजनिक घोषणा में निर्धारित समय के भीतर सबूत के साथ दावा प्रस्तुत करने में विफल रहता है, दिवालिया होने की शुरुआत की तारीख के नब्बेवें दिन या उससे पहले अंतरिम समाधान पेशेवर या समाधान पेशेवर को सबूत के साथ दावा प्रस्तुत कर सकता है।

(3) जहां उप-विनियमन (2) में लेनदार विनियमन 8 के तहत एक वित्तीय लेनदार है, उसे ऐसे दावे को स्वीकार करने की तारीख से समिति में शामिल किया जाएगा:

बशर्ते कि इस तरह के समावेश से समिति द्वारा इस तरह के समावेश से पहले लिए गए किसी भी निर्णय की वैधता प्रभावित नहीं होगी।

13. दावों का सत्यापन।— (1) अंतरिम समाधान पेशेवर या समाधान पेशेवर, जैसा भी मामला हो, दावों की प्राप्ति की अंतिम तिथि से सात दिनों के भीतर, दिवाला शुरू होने की तारीख के अनुसार, प्रत्येक दावे की पुष्टि करेगा, और उसके बाद लेनदारों की एक सूची बनाए रखेगा जिसमें उनके द्वारा दावा की गई राशि, और ऐसे दावों के संबंध में प्रतिभूति ब्याज, यदि कोई हो, के साथ लेनदारों के नाम होंगे।

(2) लेनदारों की सूची होगी-

(क) दावे के प्रमाण प्रस्तुत करने वाले व्यक्तियों द्वारा निरीक्षण के लिए उपलब्ध;

(ख) सदस्यों, भागीदारों द्वारा निरीक्षण के लिए उपलब्ध। निगमित देनदार के निदेशक और गारंटर;

(ग) वेबसाइट पर प्रदर्शित, किसी भी, कॉर्पोरेट देनदार;

(घ) न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के साथ दायर; और

(ङ) समिति की पहली बैठक में प्रस्तुत किया गया।

14. दावे की राशि का निर्धारण। —(1) जहाँ लेनदार द्वारा दावा की गई राशि किसी भी आकस्मिकता या अन्य कारण से सटीक नहीं है, अंतरिम समाधान पेशेवर या समाधान पेशेवर, जैसा भी मामला हो, अपने पास उपलब्ध जानकारी के आधार पर दावे की राशि का सबसे अच्छा अनुमान लगाएगा।

(2) अंतरिम समाधान पेशेवर या समाधान पेशेवर, जैसा भी मामला हो, उप-विनियमन (1) के तहत किए गए दावों के अनुमानों सहित स्वीकार किए गए दावों की राशि को जल्द से जल्द संशोधित करेगा, जब उसे इस तरह के संशोधन की आवश्यकता वाली अतिरिक्त जानकारी मिलती है।”

इन विनियमों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि समाधान पेशेवर को अर्ध-न्यायिक शक्तियों के विपरीत प्रशासनिक अधिकार दिए गए हैं। वास्तव में, तब भी जब समाधान पेशेवर को 35- ए,विनियमन के तहत निर्धारण करना है। उसे केवल निम्नलिखित निर्धारण के आधार पर उचित राहत के लिए निर्णायक प्राधिकरण को आवेदन करना है:

“35-ए. अधिमाम्य और अन्य लेनदेन।—(1) दिवाला शुरू होने की तारीख के पचहत्तरवें दिन, उस पर या उससे पहले समाधान पेशेवर एक राय बनाएगा कि क्या कॉर्पोरेट देनदार

को धारा 43, 43, 30 या 66 के तहत किसी भी लेनदेन के अधीन किया गया है।

(2) जहां समाधान पेशेवर की राय है कि निगमित देनदार को धारा 43, 43, 30 या 66 के तहत किसी भी लेनदेन के अधीन किया गया है, वह बोर्ड को सूचित करते हुए दिवालिया होने की शुरुआत की तारीख के एक सौ पंद्रहवें दिन या उससे पहले एक निर्धारण करेगा।

(3) जहां समाधान पेशेवर उप-विनियमन (2) के तहत कोई निर्धारण करता है, वह दिवाला शुरू होने की तारीख के एक सौ पैंतीसवें दिन या उससे पहले उचित राहत के लिए निर्णायक प्राधिकरण को आवेदन करेगा।”

90. इसके विपरीत, परिसमापक को संहिता को बाधित करने वाली परिसमापन कार्यवाही में, दावों को समेकित और सत्यापित करना होता है, और संहिता की धारा 38 से 40 के तहत ऐसे दावों को स्वीकार या अस्वीकार करना होता है। धारा 41 और 42, परिसमापक और समाधान पेशेवर की शक्तियों के बीच विरोधाभास के रूप में, नीचे दिए गए हैं:

“41. **दावों के मूल्यांकन का निर्धारण।**—परिसमापक धारा 40 के तहत स्वीकार किए गए दावों का मूल्य बोर्ड द्वारा निर्दिष्ट तरीके से निर्धारित किया जाएगा।

42. **परिसमापक के निर्णय के खिलाफ अपील करें।**—एक लेनदार ऐसे निर्णय की प्राप्ति के चौदह दिनों के भीतर दावों को स्वीकार या अस्वीकार करने के परिसमापक के निर्णय के खिलाफ निर्णायक प्राधिकरण से अपील कर सकता है।”

इन धाराओं से यह स्पष्ट है कि जब परिसमापक धारा 40 के तहत स्वीकार किए गए दावों का मूल्य "निर्धारित" करता है, तो ऐसा निर्धारण एक "निर्णय" है, जो प्रकृति में अर्ध-न्यायिक है, और जिसके खिलाफ संहिता की धारा 42 के तहत निर्णायक प्राधिकरण में अपील की जा सकती है।

91. परिसमापक के विपरीत, समाधान पेशेवर संहिता की धारा 28 के तहत लेनदारों की समिति की मंजूरी के बिना कई मामलों में कार्य नहीं कर सकता है, जो दो-तिहाई बहुमत, द्वारा किया जा सकता है। एक समाधान पेशेवर को दूसरे के साथ प्रतिस्थापित करना, यदि वे उसके प्रदर्शन से नाखुश हैं। इस प्रकार, समाधान पेशेवर वास्तव में समाधान प्रक्रिया का एक सहायक होता है, जिसके प्रशासनिक कार्यों की देखरेख लेनदारों की समिति और निर्णायक प्राधिकरण द्वारा की जाती है।

(इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

(2) आर्सेलर मित्तल :-

78. अब यह निर्धारित किया जाना है कि क्या निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में किसी भी चुनौती को दिया जा सकता है। मान लीजिए कि एक समाधान योजना को धारा 30(2) के तहत एक समाधान पेशेवर द्वारा सीमा पर अस्वीकार कर दिया जाता है। इस स्तर पर क्या समाधान पेशेवर की अस्वीकृति को चुनौती देने के लिए संबंधित समाधान आवेदक के लिए यह खुला है? यह तय कानून है कि एक अधिनियम को व्यवहार्य होने के लिए डिज़ाइन किया गया है, और इसकी व्याख्या को इस तरह से व्यवहार्य बनाने के लिए डिज़ाइन किया

जाना चाहिए। सी. आई. टी. बनाम एस. तेजा सिंह एस. सी. आर पी.403 :ए. आई. आर. पीपी. 355-56, पैरा 9) मामले में, इस न्यायालय ने कहा:

"9.अब हमें प्रश्न के एक पहलू का उल्लेख करना चाहिए, जो ऊपर बताए गए निष्कर्ष को दृढ़ता से मजबूत करता है। प्रत्यर्थी द्वारा विवादित अर्थ पर। धारा 18-क (9)(6) पूरी तरह से निरर्थक हो जाएगी, क्योंकि धारा 22(1) और 22(2) का धारा 18-क(3) के तहत प्रस्तुत किए जाने वाले अग्रिम अनुमानों के लिए कोई आवेदन नहीं हो सकता है, और यदि हम इस तर्क को स्वीकार करते हैं, तो हमें यह मानना होगा कि हालांकि विधायिका ने खंड 18-ए (9) (बी) को खंड 28 के संचालन के भीतर खंड 18-ए (3) के तहत अनुमान भेजने मान लेना विफलता लाने के उद्देश्य से अधिनियमित किया था, लेकिन वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में स्पष्ट रूप से विफल रही। एक अर्थ जो इस तरह के परिणाम की ओर ले जाता है, यदि संभव हो, तो इस सिद्धांत पर बचा जाना चाहिए, जो उक्ति में व्यक्त किया गया है, "*ut res magis valeat quam pereat*"। कर्टिस बनाम स्टोविन और विशेष रूप से क्यू. बी. डी. पी. में फ्राय, एल. जे. की निम्नलिखित टिप्पणियाँ।519:

‘हमें दी गई एकमात्र वैकल्पिक संरचना इस परिणाम की ओर ले जाएगी कि विधायिका का स्पष्ट इरादा धारा की भाषा में थोड़ी सी निष्क्रियता के कारण पूरी तरह से विफल हो गया है। अगर हमें इस अर्थ को अपनाना

है, तो हमें इस अधिनियम का अर्थ इसके उद्देश्य को विफल आदेश के लिए करना चाहिए, न कि इसके उद्देश्य को लागू आदेश के लिए।'

संविधिपर क्रेज द्वारा पेज 90 और कानूनों की व्याख्या पर मैक्सवेल, दसवां संस्करण, पृ. 236-371 'लॉर्ड डुनेडिन ने व्हिटनी बनाम आई. आर. सी., टी. सी. पी. में 110 (एसी पी में। 52) कहा कि एक अधिनियम व्यवहार्य होना, और अदालत द्वारा इसकी व्याख्या उस उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए होनी चाहिए, जब तक कि महत्वपूर्ण चूक या स्पष्ट निर्देश उस उद्देश्य को अप्राप्य न बना दे तैयार किया गया"

79. ऊपर उल्लिखित समय-सीमा को देखते हुए, और इस तथ्य को देखते हुए कि एक समाधान आवेदक को अपनी समाधान योजना पर विचार करने का कोई निहित अधिकार नहीं है, यह स्पष्ट है कि इस स्तर पर निर्णायक प्राधिकरण को कोई चुनौती नहीं दी जा सकती है। उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के तहत दायर एक रिट याचिका को भी इस आधार पर खारिज कर दिया जाएगा कि इस स्तर पर कोई भी अधिकार, मौलिक अधिकार से बहुत कम, प्रभावित नहीं होता है। यह धारा 30(4) के पहले परंतुक द्वारा भी स्पष्ट किया गया है, जिसके तहत एक समाधान पेशेवर केवल नई समाधान योजनाओं को आमंत्रित कर सकता है यदि कोई अन्य समाधान योजना पारित नहीं हुई है।

80. हालांकि, यह नहीं भूलना चाहिए कि एक समाधान पेशेवर केवल "जांच" और "पुष्टि" करने के लिए है कि प्रत्येक समाधान

योजना धारा 30(2) द्वारा प्रदान की गई जानकारी के अनुरूप है। धारा 25(2)(i) के तहत, समाधान पेशेवर लेनदारों की समिति की बैठकों में सभी समाधान योजनाओं को प्रस्तुत करने का कार्य करेगा। इसके बाद धारा 30(3) आती है, जिसमें कहा गया है कि समाधान पेशेवर लेनदारों की समिति के समक्ष अनुमोदन के लिए ऐसी समाधान योजनाएं प्रस्तुत करेगा जो उप-धारा (2) में निर्दिष्ट शर्तों की पूर्ति करती हैं।

इस प्रावधान को धारा 25(2)(i) के साथ और धारा 30(4) के दूसरे परंतुक के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें यह प्रावधान है कि जहां कोई समाधान आवेदक धारा 29-क(ग) के तहत अयोग्य पाया जाता है, समाधान आवेदक को लेनदारों की समिति द्वारा धारा 29क(ग) के परंतुक के अनुसार अतिदेय राशि का भुगतान करने के लिए ऐसी अवधि, जो 30 दिनों से अधिक नहीं हो, की अनुमति दी जाएगी। इन सभी प्रावधानों को देखने से पता चलेगा कि समाधान पेशेवर को यह जांचने की आवश्यकता है कि लेनदारों की समिति को इसे प्रस्तुत करने से पहले विभिन्न आवेदकों द्वारा प्रस्तुत समाधान योजना सभी मामलों में पूर्ण है। समाधान पेशेवर को कोई निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन केवल यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रस्तुत समाधान योजनाएं लेनदारों की समिति के समक्ष रखे जाने से पहले सभी मामलों में पूर्ण हैं, जो इसे अनुमोदित कर सकते हैं या नहीं। तथ्य यह है कि समाधान पेशेवर को यह भी पुष्टि करनी है कि एक समाधान योजना संहिता की धारा 29-क सहित वर्तमान में लागू कानून के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं करती है, केवल इसका मतलब है कि उसकी प्रथमदृष्टया राय लेनदारों की समिति

को दी जानी चाहिए कि किसी कानून का उल्लंघन किया गया है या नहीं किया गया है। धारा 30(2)(ड) समाधान पेशेवर को यह "तय" करने का अधिकार नहीं देती है कि क्या समाधान योजना कानून के प्रावधानों का उल्लंघन करती है या नहीं।"

(इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

यद्यपि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त अनुपात आई. बी. सी. के प्रावधानों के संदर्भ में था, दंड संहिता, 1860 या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के प्रावधानों का कोई संदर्भ दिए बिना, फिर भी इस न्यायालय के विचार के लिए जो प्रासंगिक होगा वह यह है कि आर. पी. की भूमिका और जिम्मेदारी की प्रकृति की बहुत विस्तार से जांच की गई है और उपरोक्त अनुच्छेदों से, इस न्यायालय को यह प्रतीत नहीं होता है कि ऐसी कोई भी भूमिका "सार्वजनिक कर्तव्यों" की प्रकृति या "सार्वजिक चरित्र" ग्रहण करेगी।

42. जिस कारण से यह न्यायालय उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचा, वह इस प्रकार है। यह सामान्य बात है कि प्रत्येक कर्तव्य, भले ही "सार्वजनिक कर्तव्य" किस्म का हो, आवश्यक रूप से एक ऐसे चरित्र का नहीं हो सकता है जो प्रकृति में "सार्वजनिक" हो। ऐसे कई उदाहरण हो सकते हैं जहां किसी विशेष अधिनियम में किसी व्यक्ति की भूमिका या जिम्मेदारी "सार्वजनिक कर्तव्य" की प्रकृति को मानती है लेकिन "सार्वजनिक चरित्र" के बिना। इस दृष्टिकोण को **केंद्रीय ब्यूरो बैंक प्रतिभूति और धोखाधड़ी प्रकोष्ठ बनाम रमेश गेली और अन्य**

में रिपोर्ट किए गए (2016) 3 एस. सी. सी. 788 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से मजबूती मिली है। जिसमें रंजन गोगोई अन्य न्या. (उस समय उनके स्वामी के रूप में) ने पैरा 36 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया था:-

“36. हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधिनियमन के लिए बताए गए उद्देश्यों और कारणों में यह स्पष्ट किया गया है कि अधिनियम, अन्य बातों के साथ साथ-साथ, "लोक सेवक" की परिभाषा के दायरे को व्यापक बनाने की परिकल्पना करता है, फिर भी, किसी भी पद के धारक द्वारा सार्वजनिक कर्तव्यों का केवल प्रदर्शन ही पदधारी को पी. सी. अधिनियम की धारा 2(ग) में निहित "लोक सेवक" अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर नहीं ला सकता है। धारा 2(ख) में निहित "सार्वजनिक कर्तव्य" की व्यापक परिभाषा किसी भी कार्यालय से जुड़े किसी भी कर्तव्य को शामिल करने में सक्षम होगी क्योंकि समकालीन परिदृश्य में शायद ही कोई ऐसा कार्यालय हो जिसके कर्तव्यों का पता अंतिम उपाय में से लगाया जा सके। लोक हित या बड़े पैमाने पर समुदाय के हित पर। "लोक सेवक" की परिभाषा की इतनी व्यापक समझ का प्रभाव किसी निजी पद या सार्वजनिक पद के धारक के बीच सभी अंतरों को मिटाने का हो सकता है, जिसे मेरे विचार में बनाए रखा जाना चाहिए। इसलिए, मेरे अनुसार, कार्यालय और उसके संबंध में किए गए कर्तव्यों के संदर्भ में "लोक सेवक" अभिव्यक्ति को सार्वजनिक चरित्र के होने के लिए समझना अधिक उचित होगा।”

इस प्रकार, यह आवश्यक नहीं है कि सभी कर्तव्य जिन्हें मोटे तौर पर "सार्वजनिक कर्तव्य" के रूप में परिभाषित किया गया है, वे अपने भीतर "सार्वजनिक चरित्र" को शामिल करेंगे। केवल इसलिए कि आईपी कुछ भूमिकाओं, जिम्मेदारियों और कर्तव्यों के साथ निहित है जो "सार्वजनिक कर्तव्यों" की प्रकृति में भाग ले सकते हैं, यह एक आवश्यक निष्कर्ष या एक निश्चित निष्कर्ष नहीं है कि उनका निर्वहन "सार्वजनिक चरित्र" की प्रकृति में किया जा रहा है। वर्तमान मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए *स्विस रिबन (पूर्वोक्त)* और *आर्सेलर मितल (पूर्वोक्त)* की भूमिका को परिभाषित करते हुए आर. पी. मात्र एक "सहायक" के रूप में, इस न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि भले ही आई. पी. के लिए निर्धारित भूमिकाएं और कर्तव्य "सार्वजनिक कर्तव्यों" के दायरे में आ सकते हैं, फिर भी वे "सार्वजनिक चरित्र" नहीं मानेंगे। इस तरह के अधिनियमों के तहत विभिन्न व्यक्तियों पर लगातार विकसित होने वाले कानूनों और भूमिकाओं और कर्तव्यों के साथ, व्यक्तियों और कुछ मामलों में, संस्थानों की जिम्मेदारियों का चरित्र अतिव्यापी हो सकता है और यह "सार्वजनिक कर्तव्य" के साथ जुड़ा हो सकता है, लेकिन यह अपने आप में भा.दं.सं. की धारा 21 या पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 2(ग) के उद्देश्यों के लिए ऐसे सभी व्यक्तियों या संस्थानों को "लोक सेवकों" के रूप में वर्गीकृत करने के लिए कानूनी रूप से निर्धारित मानदंड नहीं होगा। वह भी, जब ऐसा प्रतीत होता है कि विधानमंडल ने जानबूझकर ऐसे व्यक्ति या संस्था को इस दायरे से हटा दिया है। इस प्रकार,

इस न्यायालय की राय में, संवैधानिक न्यायालय वह भी न्यायिक व्याख्या की प्रक्रिया द्वारा इस तरह के कठोर निष्कर्ष तक पहुंचने में अनिच्छुक होंगे।।

आई. बी. सी. का संहिताबद्ध : आवश्यकता और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य:

43. यह कहने के बाद, अब आई. बी. सी. के उद्भव और विकास पर विचार करना प्रासंगिक होगा। उद्देश्यों और कारणों का कथन एक व्यापक पृष्ठभूमि देता है जो वर्तमान मामले में विचार करने के लिए भी प्रासंगिक होगा। उक्त उद्देश्यों और कारणों से यह स्पष्ट है कि प्रेसीडेंसी टाउन दिवाला अधिनियम, 1909, प्रांतीय दिवाला अधिनियम, 1920, रूग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 (एस. आई. सी. ए.), बैंकों और वित्तीय संस्थानों के कारण ऋण की वसूली अधिनियम, 1993 और वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और प्रतिभूति ब्याज अधिनियम, 2002 (एस. ए. आर. एफ. ए. ई. एस. आई. अधिनियम) जैसे विभिन्न अधिनियमों को आई. बी. सी. तैयार करने के लिए संहिताबद्ध किया गया था। इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि विधायिका ने पाया कि दिवाला और दिवालियापन के लिए मौजूदा ढांचा अपर्याप्त था और इसके परिणामस्वरूप अक्सर ऐसे विवादों के समाधान या निवारण में अत्यधिक देरी होती थी। आई. बी. सी. का उद्देश्य ऐसे सभी कानूनों को समेकित या फिर से व्यवस्थित करना था जिसमें इसमें उल्लिखित उद्देश्यों के लिए, यदि आवश्यक हो, तो संशोधन करना शामिल था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि आई. बी. सी. को संहिताबद्ध करते समय, विधायिका के पास इस

तरह के संहिताकरण को सुविधाजनक बनाने के लिए उपरोक्त अधिनियम और सभी प्रासंगिक सामग्री थी।

44. वास्तव में, इस तरह के संहिताकरण से पहले, भारत सरकार ने दिवाला और दिवालियापन कानूनों के सभी पहलुओं का अध्ययन करने और उचित सिफारिशें करने के लिए दिवालियापन कानून सुधार समिति, 2015 का गठन किया था। उक्त सिफारिशों को स्वीकार किया गया और उन्हें संहिताबद्ध किया गया और आई.बी.सी., 2016 के रूप में घोषित किया गया।

धारा 232 और 233 आई. बी. सी. का प्रभाव:

45. पूर्वोक्त ऐतिहासिक, कानूनी और तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के साथ, यह न्यायालय अब वर्तमान मामले पर धारा 233 के साथ पठित धारा 232 के प्रभाव की जांच करेगा। धारा 232 के एक स्पष्ट अध्ययन से पता चलता है कि बोर्ड (आई. बी. बी. आई.) के अध्यक्ष, सदस्य, अधिकारी और अन्य कर्मचारी, जब आई. बी. सी. के किसी भी प्रावधान के अनुसरण में कार्य करते हैं या कार्य करने का इरादा रखते हैं, तो उन्हें भा.द.सं. 1860 की धारा 21 के अर्थ के भीतर लोक सेवक माना जाता है। व्याख्या के सुनहरे नियम को लागू करते हुए, यह स्पष्ट है कि आई. पी. को जानबूझकर धारा 232 के प्रावधानों से हटा दिया गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आई. बी. सी. यह परिभाषित नहीं करता है कि लोक सेवक कौन है और इसलिए, केवल वे व्यक्ति जिन्हें लोक सेवक माना जाता है वे हैं जिन्हें धारा 232 में विशेष रूप से नामित किया गया है। यह भी

ध्यान दें प्रासंगिक है कि धारा 233 सद्भावना से की गई कार्रवाई के लिए सुरक्षा प्रदान करती है, जिसमें सरकार या सरकार के किसी अन्य अधिकारी, या अध्यक्ष, सदस्य, अधिकारी या बोर्ड के अन्य कर्मचारी या आई. बी. सी. के तहत सद्भावना से किए गए या किए जाने के इरादे वाले किसी भी कार्य के लिए *"दिवालिया पेशेवर या परिसमापक"* के खिलाफ कोई मुकदमा, अभियोजन या अन्य कानूनी कार्यवाही नहीं होगी। यह स्पष्ट है कि आई. पी. को सुरक्षा प्रदान की गई है, विशेष मुकदमा से ऐसी परिस्थितियों में जहां अपने कर्तव्यों का पालन करते समय, उसके प्रदर्शन के खिलाफ किसी भी झूठी या असद्भावी शिकायत का जोखिम हो सकता है। इसके अलावा, धारा 232 और 233 के बीच का अंतर इतना छोटा है कि यह न्यायालय यह समझने में असमर्थ है कि विधायिका ने अपने विवेक से, आईपी को सद्भावना से किए गए किसी भी कार्य से बचाने के लिए 233 का मसौदा तैयार करते समय, धारा 232 में "आईपी" को सम्मिलित न करके अस्थायी स्मृतिलोप की पूरी तरह से अनदेखी की थी, जो कि तत्काल पिछली धारा है । जबकि उसी समय, धारा 232 में, विधानमंडल ने धारा 21 आईपीसी के प्रयोजनों के लिए "लोक सेवक" माने जाने के लिए बोर्ड के अन्य अधिकारियों को शामिल किया था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि चूक कुछ भी नहीं थी बल्कि जानबूझकर था ।

46. यह सामान्य बात है कि विधानमंडल को किसी विशेष कानून को लागू करते समय सभी कानूनों की जानकारी होती है। वर्तमान मामले में, यह एक

बहुत बड़ा महत्व रखता है क्योंकि आई. बी. सी., 2016 को संहिताबद्ध करते समय विधायिका के पास सभी प्रासंगिक कानून थे। यह भी सामान्य है कि न्यायालय किसी भी अधिनियम के प्रावधानों की संवैधानिकता के पक्ष में झुकेंगे और बिना किसी ठोस और प्रासंगिक सामग्री के इसके खिलाफ निष्कर्ष निकालने में अनिच्छुक होंगे। उपरोक्त दोनों धाराओं को ध्यान में रखते हुए, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि धारा 232 में चूक अनजाने में नहीं थी, बल्कि आई. पी. को इसके दायरे में शामिल नहीं करने के लिए जानबूझकर चूक थी। यह सामान्य बात है कि यदि चूक जानबूझकर की जाती है तो न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेंगे क्योंकि यह कानून बनाने और 'केसस ओमिसस' की आपूर्ति करने के समान होगा जो निषिद्ध है और अदालतों के अधिकार क्षेत्र में नहीं है।

47. इस समय, 16वीं लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत आई. बी. सी., 2015 पर संयुक्त समिति की रिपोर्ट पर विचार करना प्रासंगिक होगा। विचार-विमर्श से पहले और बाद में विशेष न्यायालय द्वारा अपराधों के मुकदमे के संबंध में प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है:-

"64. विशेष न्यायालय द्वारा अपराधों का विचारण- खंड 240 (धारा 233सी के रूप में पुनः क्रमांकित)

खंड 240 निम्नानुसार प्रावधान करता है -

"दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में कुछ भी होने के बावजूद, इस संहिता के भाग II के तहत अपराधों और भाग III के तहत किसी भी दिवालिया पेशेवर द्वारा अपराधों का मुकदमा कंपनी अधिनियम,

2013 के अध्याय XXXVIII के तहत स्थापित विशेष न्यायालय द्वारा किया जाएगा।”

समिति निर्णय लेती है कि शब्द "भाग II और किसी भी द्वारा अपराध" खंड 240 (1) में दिखाई देने वाले "के भाग III के तहत दिवालिया पेशेवर को हटाया जा सकता है।”

उपरोक्त प्रावधान को हटाए गए हिस्से के बिना आई. बी. सी., 2016 की धारा 236 के रूप में बरकरार रखा गया है। उसी को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“236. विशेष न्यायालय द्वारा अपराधों का विचारण।—(1) इसके बावजूद दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में कुछ भी, इस संहिता के तहत अपराधों का मुकदमा कंपनी अधिनियम, 2013 (2013 का 18) के अध्याय XXVIII के तहत स्थापित विशेष न्यायालय द्वारा किया जाएगा।

(2) XXXX

(3) XXXX

(4) XXXX”

यह इस न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को पर्याप्त रूप से मजबूत करेगा कि विधायिका को दिवाला एवं दिवालियापन संहिता को संहिताबद्ध करने से पहले सभी प्रासंगिक अधिनियमों और सामग्रियों को ध्यान में रखा गया माना जाता है और यह चूक जानबूझकर की गई थी। इस प्रकार, इसके परिणामस्वरूप, यह स्पष्ट है कि आई. पी. को आई. बी. सी. की धारा 232 के

दायरे में शामिल नहीं किया गया था। एक आवश्यक परिणाम के रूप में, यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि आई. पी., आई. बी. सी. के प्रावधानों के अनुसार, जैसा कि आज है, विधायिका के द्वारा "लोक सेवक" नहीं माना गया था।

48. वर्तमान कानूनी मुद्दे की जांच करते समय इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया एक अन्य प्रासंगिक पहलू वर्ष 2018 में भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड (प्रशासक की नियुक्ति और निवेशकों को रिफंड के लिए प्रक्रिया) विनियमों का प्रख्यापन है, जिसके तहत नियुक्त किया जाने वाला प्रशासक आईबीबीआई के साथ पंजीकृत आईआरपी होना चाहिए और जो उक्त विनियमों के विनियमन 5 के उप विनियमन (5) के अनुसार, आईपीसी की धारा 21 के अर्थ के भीतर एक "लोक सेवक" माना जाता है। यदि विधायिका का इरादा किसी भी समय, दिवाला एवं दिवालियापन संहिता की धारा 232 में आईपी को शामिल करने के लिए वर्ष 2016 में दिवाला एवं दिवालियापन संहिता को संहिताबद्ध करने के बाद भी था, तो इसे धारा 232 में या कहीं और शामिल किया जा सकता था, उस समय या उसके बारे में जब उपरोक्त सेबी विनियम वर्ष 2018 में लागू किए गए थे। अब तक ऐसा नहीं किया गया है। यह अपने आप में एक मजबूत संकेतक है और इस तथ्य की ओर एक स्पष्ट संकेतक है कि धारा 232 के भीतर आईपी को शामिल नहीं करने की चूक जानबूझकर की गई है और इसलिए, यह कैसस ओमिसस का मामला नहीं हो सकता है।

केसस ओमिसस का सिद्धांत :

49. 'केसस ओमिसस' के सिद्धांत के संबंध में कानून काफी अच्छी तरह से स्थापित है। संवैधानिक न्यायालयों को प्रदत्त अधिकार क्षेत्र और अधिकार कानून की व्याख्या करना है न कि कानून बनाना। यह भी काफी अच्छी तरह से तय किया गया है कि यदि कानून के किसी प्रावधान का दुरुपयोग किया जाता है और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जाता है, तो यदि आवश्यक समझा जाए तो इसे संशोधित करना, छेड़छाड़ करना या निरस्त करना विधायिका का काम है। विधायी 'केसस ओमिसस' को न्यायिक व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा प्रदान नहीं किया जा सकता है। न्यायिक व्याख्या का अपवाद एक अंतराल को भरने में सहायता के लिए केवल और केवल स्पष्ट आवश्यकता के मामले में उत्पन्न होगा और इसका कारण अधिनियम के चारों कोनों में ही पाया जाएगा। जहाँ तक वर्तमान मामले का संबंध है, पूर्वोक्त प्रावधानों और विश्लेषण को स्पष्ट आवश्यकता का समर्थन नहीं मिलता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *संगीता सिंह बनाम भारत संघ और अन्य* (2005) 7 अन्य सी. सी. 484 में रिपोर्ट किए गए मामले में निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया:

"6. शब्द और वाक्यांश ऐसे प्रतीक हैं जो संदर्भों के मानसिक संदर्भों को प्रोत्साहित करते हैं। किसी अधिनियम की व्याख्या करने का उद्देश्य इसे लागू करने वाली विधायिका के इरादे का पता लगाना है। (इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया बनाम प्राइस वाटरहाउस देखें)। विधायिका का इरादा मुख्य रूप से

उपयोग की गई भाषा से एकत्र किया जाना है, जिसका अर्थ है कि जो कहा गया है और जो नहीं कहा गया है उस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। परिणामतः, एक ऐसी संरचना से बचना होगा जिसके लिए शब्दों के समर्थन, जोड़ या प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है या जिसके परिणामस्वरूप शब्दों को अर्थहीन रूप में अस्वीकार कर दिया जाता है। जैसा कि क्रॉफर्ड बनाम स्पूनर में देखा गया है कि न्यायालय किसी विधानमंडल के अधिनियम के दोषपूर्ण वाक्यांशों की सहायता नहीं कर सकती हैं, वे जोड़ या सुधार और निर्माण द्वारा उन कमियों को पूरा नहीं कर सकती हैं जो वहां बची हैं। (गुजरात राज्य बनाम दिलीपभाई नाथजीभाई पटेल देखें।) किसी अधिनियम में शब्दों को पढ़ना निर्माण के सभी नियमों के विपरीत है जब तक कि ऐसा करना बिल्कुल आवश्यक न हो। [स्टॉक बनाम फ्रैंक जोन्स (टिपटन) लिमिटेड देखें] व्याख्या के नियम न्यायालयों को ऐसा करने की अनुमति नहीं देते हैं, जब तक कि प्रावधान जैसा है वह अर्थहीन या संदिग्ध अर्थ का न हो। न्यायालयों को संसद के किसी अधिनियम में शब्दों को पढ़ने का अधिकार नहीं है जब तक कि इसका स्पष्ट कारण अधिनियम के चारों कोनों के भीतर नहीं पाया जाता है। (लार्ड लोरबर्न के अनुसार, विकर्स संस और मैक्सिम लिमिटेड में एल. सी. बनामइवांस, जुम्मा मस्जिद बनाम कोडिमनियान्द्र देवैया में उद्धृत)।

9. किसी प्रावधान की व्याख्या करते समय न्यायालय केवल कानून की व्याख्या करता है और इसे कानून नहीं बना सकता है। यदि कानून के किसी प्रावधान का दुरुपयोग किया जाता है और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जाता है, तो यदि

आवश्यक समझा जाए तो इसे संशोधित करना, या निरस्त करना विधायिका का काम है। (सी. एस. टी. बनाम पॉप्युलर ट्रेडिंग कं. देखें) विधायी मामले की छूट न्यायिक व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा प्रदान नहीं की जा सकती है।

10. निर्माण के दो सिद्धांत- एक केसस ओमिसस से संबंधित और दूसरा समग्र रूप से अधिनियम को पढ़ने के संबंध में, प्रतीत होते हैं अच्छी तरह से व्यवस्थित दिखते हैं। पहले सिद्धांत के तहत, एक कैसस ओमिसस, स्पष्ट आवश्यकता के मामले को छोड़कर अदालत द्वारा आपूर्ति नहीं की जा सकती है, और जब, इसके लिए कारण कानून के चार कोनों में ही पाया जाता है, लेकिन साथ ही, एक कैसस ओमिसस को आसानी से अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए और उस उद्देश्य के लिए, एक कानून या धारा के सभी हिस्सों को एक साथ समझा जाना चाहिए, और एक धारा के प्रत्येक खंड को संदर्भ और अन्य खंडों के संदर्भ के साथ समझा जाना चाहिए ताकि किसी विशेष उपबंध पर किए जाने वाले निर्माण से संपूर्ण संविधि का सुसंगत अधिनियमन हो सके। यह तब और अधिक होगा जब किसी विशेष खंड का शाब्दिक निर्माण प्रकट रूप से बेतुका या विसंगतिपूर्ण परिणाम देता है जो विधायिका द्वारा अभिप्रेत नहीं हो सकता था। "एक अनुचित परिणाम उत्पन्न करने का इरादा ", डैनकवर्ट्स, एल. जे. ने आर्टेमिड बनाम प्रोकोपियूल (ऑल ई. आर. पी.) में कहा। 544 ।) "यदि कोई अन्य निर्माण उपलब्ध है तो इसे किसी अधिनियम के लिए आरोपित नहीं किया जाना चाहिए।" जहां शब्दों को शाब्दिक रूप से लागू किया जाए तो "कानून के स्पष्ट इरादे को विफल कर देगा और पूरी तरह से अनुचित परिणाम

देगा", हमें "शब्दों के साथ कुछ हेर फेर करना चाहिए" और इसलिए उस स्पष्ट इरादे को प्राप्त करना चाहिए और एक तर्कसंगत निर्माण करना चाहिए। [ल्यूक बनाम आई. आर. सी. में प्रति लॉर्ड रीड जहां ए. सी. पी. 577 उन्होंने यह भी कहा: (सभी ई. आर. पी. 664 आई) "यह कोई नई समस्या नहीं है, हालांकि मसौदा तैयार करने का हमारा मानक ऐसा है कि यह शायद ही कभी सामने आता है।"]"

(इस न्यायालय द्वारा ज़ोर दिया गया)

इस न्यायालय की विद्वान खण्ड पीठ ने (2022) 292 डी. एल. टी. 659 (डी. बी.) में प्रकाशित *इंदिरा उप्पल बनाम भारत संघ और अन्य* में स्वीकृति के साथ (2016) 9 एस. सी. सी. 647 में प्रकाशित *बबीता लीला बनाम भारत संघ* में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को अपने निर्णय के पैरा 12 में इस प्रकार उद्धृत किया:-

"12. न्यायालयों का सामान्य दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करना है कि वे अपने विषय से भटककर विधायी कार्य पर अतिक्रमण न करें। इस दृष्टिकोण का एक विशिष्ट उदाहरण यह नियम है कि एक लोप हुई स्थिति की रचना नहीं की जानी चाहिए या उसे प्रदान नहीं किया जाना चाहिए, ताकि एक अधिनियम को उस मामले को पूरा करने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सके जिसके लिए स्पष्ट रूप से और निस्संदेह प्रावधान नहीं किया गया है। *बबीता लीला बनाम भारत संघ*, (2016) 9 एस. सी. सी. 647 मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया है:-

"63. यह एक तुच्छ कानून है कि इस बात की कोई धारणा नहीं है कि एक केसस ओमिसस मौजूद है और एक अदालत को एक केसस ओमिसस बनाने से बचना चाहिए जहां कोई नहीं है। यह व्याख्या का एक मौलिक नियम है कि अदालतें अधिनियम में कमियों को नहीं भरेंगी, उनके कार्य गैर-प्रत्यक्ष हैं यानी कानून की घोषणा या निर्णय करना। इस सुव्यवस्थित व्याख्या को दोहराते हुए, यह न्यायालय भारत संघ बनाम धर्मेंद्र टेक्सटाइल प्रोसेसर [भारत संघ बनाम धर्मेंद्र टेक्सटाइल प्रोसेसर, (2008) 13 एस. सी. सी. 369:(2008) 306 आई. टी. आर. 277] ने फैसला सुनाया था कि यह कानून में एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि एक अदालत वैधानिक प्रावधान या निर्धारित प्रावधान में कुछ भी नहीं पढ़ सकती है जो स्पष्ट और स्पष्ट है। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक अधिनियम विधायिका के आदेश में होने के कारण, उसमें प्रयुक्त भाषा विधायी इरादे का निर्धारक है। इसने स्टॉक बनाम फ्रैंक जोन्स (टिपटन) लिमिटेड [स्टॉक बनाम फ्रैंक जोन्स (टिपटन) लिमिटेड, [1978] 1 ऑल ईआर 948 में अनुमोदन के साथ अवलोकन दर्ज किया:[1978] 1 डब्ल्यू. एल. आर. 211 (एच. एल.)] ने कहा कि किसी अधिनियम में शब्दों को पढ़ना निर्माण के सभी नियमों के विरुद्ध है जब तक कि ऐसा करना बिल्कुल आवश्यक न हो। इसमें यह टिप्पणी कि व्याख्या के अधिनियम अदालतों को ऐसा करने की अनुमति नहीं देते हैं, जब तक कि वह प्रावधान, जैसा कि वह खड़ा है, अर्थहीन या संदिग्ध न हो और अदालतें संसद के किसी

अधिनियम में शब्दों को पढ़ने की हकदार नहीं हैं, जब तक कि इसका स्पष्ट कारण कानून के चारों कोनों के भीतर नहीं पाया जाता है। यह घोषणा की गई थी कि न्यायालय, द्वारा केसस ओमिसस की आपूर्ति नहीं की जा सकती है। स्पष्ट आवश्यकता और उस कारण के मामले को छोड़कर, अधिनियम के चारों कोनों में ही पाया जाता है, लेकिन साथ ही एक मामले में चूक का आसानी से अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए और उस उद्देश्य के लिए, एक अधिनियम या खंड के सभी हिस्सों का एक साथ अर्थ लगाया जाना चाहिए और एक खंड के प्रत्येक खंड का अर्थ संदर्भ और उसके अन्य खंडों के संदर्भ में लगाया जाना चाहिए ताकि एक विशेष प्रावधान पर रखा जाने वाला निर्माण पूरे अधिनियम का सुसंगत अधिनियमन करे।

64. हाल ही में, इस न्यायालय ने पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस नियामक बोर्ड बनाम इंद्रप्रस्थ गैस लिमिटेड [पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस नियामक बोर्ड बनाम इंद्रप्रस्थ गैस लिमिटेड, (2015) 9 एस. सी. सी. 209] मामले में अन्य लोगों के बीच यह प्रस्ताव दिया था कि जब विधायी इरादा आत्यन्तिक रूप स्पष्ट और सरल है और अन्य बातों के साथ-साथ या तो शक्ति प्रदान करने में या उपयोग की गई किसी भी अभिव्यक्ति के दायरे या विस्तार में कोई चूक जानबूझकर है और आकस्मिक नहीं है, तो न्यायिक व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा समझी गई कमी को भरना अस्वीकार्य है। यह श्री बालाजी नगर आवासीय संघ बनाम टी. एन. राज्य में इस आशय के प्रस्ताव को दोहराने के

लिए था कि न्यायालय द्वारा ऐसी स्थितियों में केसस ओमिसस की आपूर्ति नहीं की जा सकती है जहां किसी अधिनियम या उसके प्रावधान में अन्यथा देखी गई चूक एक सचेत विधायी इरादा था।”

(इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

50. विधानों की व्याख्या के प्रश्न पर, माननीय सर्वोच्च बिक्री कर आयुक्त, उत्तर प्रदेश, लखनऊ बनाम पार्सन टूल्स एंड प्लांट्स, कानपुर में न्यायालय ने (1975)

4 एस. सी. सी. 22 में निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया:-

“15. चाहे जो भी हो, धारा 10 की योजना और भाषा से, सीमा अधिनियम की धारा 5 और 10 के सिद्धांतों के अप्रतिबंधित अनुप्रयोग को बाहर करने का विधानमंडल का इरादा स्पष्ट रूप से स्पष्ट है। सीमा अधिनियम के इन प्रावधानों को, जिन्हें विधायिका ने उचित विवेक के बाद, बिक्री कर अधिनियम में शामिल नहीं किया था, सादृश्य द्वारा इसमें शामिल नहीं किया जा सकता है। एक अधिनियम विधायिका की इच्छा होने के नाते, व्याख्या का सर्वोपरि नियम, जो अन्य सभी को पछाड़ देता है, यह है कि एक अधिनियम की व्याख्या "उनके इरादे के अनुसार की जानी चाहिए जिन्होंने इसे बनाया है।" "विधायिका की इच्छा देश का सर्वोच्च कानून है और पूर्ण आज्ञाकारिता की मांग करता है। संयुक्त राज्य के "मार्शल, सी. जे. ने कहा कि न्यायिक शक्ति का कभी प्रयोग नहीं किया जाता है। "न्यायाधीशों की इच्छा को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से; हमेशा विधायिका की इच्छा को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से; या दूसरे शब्दों में, कानून की इच्छा को।

16. यदि विधायिका जानबूझकर किसी बाद के अधिनियम में किसी अनुरूप कानून को शामिल करने से चूक जाती है, या भले ही किसी अधिनियम में कोई मामला चूक हो, जिसकी भाषा अन्यथा स्पष्ट और असंदिग्ध है, तो न्यायालय व्याख्या की आड में, सादृश्य या निहितार्थ के तहत, कुछ ऐसा जिसे वह न्याय और समानता का एक सामान्य सिद्धांत मानता है, इसे जोड़कर या उसमें शामिल करके चूक की आपूर्ति करने में सक्षम नहीं है। ऐसा करने के लिए "विधायिका के संरक्षण पर प्रवेश करना होगा", न्यायालय का प्राथमिक कार्य कानून को बनाना नहीं बल्कि उन्हें लागू करना है।

23. हमने पर्याप्त कहा है और हम इसे फिर से कह सकते हैं कि जहां विधायिका किसी कानून की योजना और भाषा में अपने इरादे को स्पष्ट रूप से घोषित करती है, वहां न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अपने विवेक या नीति को स्कैन किए बिना, और कुछ भी संलग्न किए बिना, जोड़े बिना या निहित किए बिना, जो कानून देने वाले के इस तरह के व्यक्त इरादे के अनुकूल या सुसंगत नहीं हैं; अधिक तो अगर कानून एक कर लगाने वाला अधिनियम है। एक अधिनियम में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अभिप्राय के संबंध में लॉर्ड हेल्शम ने हाल ही में जो कहा है, उसे याद करते हुए हम चर्चा को समाप्त करेंगे, जो अपने आप में एक स्पष्ट और पूर्ण संहिता है:

“यह निश्चित रूप से सच है कि न्यायालय किसी भी अधिनियम के निर्माण के खिलाफ बहुत अधिक झुकेंगी जो स्पष्ट रूप से निष्पक्ष होगा। लेकिन उनके पास किसी अधिनियम की भाषा को संशोधित करने या पूरक करने की

कोई शक्ति केवल इसलिए नहीं है क्योंकि मामले के एक दृष्टिकोण से एक विषय स्वयं के पक्ष में निर्णय लेने में एक अधिनियम की तुलना में अधिक मात्रा में हकदार महसूस करता है। संसद के किसी अधिनियम की निष्पक्षता पर पहले निर्णय लेना और फिर उसे नए प्रावधानों के साथ संशोधित या पूरक करना न्यायालय का काम करना कम है ताकि उसे उस निर्णय के अनुरूप बनाया जा सके।”

(इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

उपरोक्त निर्णयों का अनुपात कानूनों की व्याख्या के सुनहरे अधिनियम का समर्थन करता है, जिसमें कानून की सरल और सरल भाषा को तब तक ध्यान में रखा जाना चाहिए जब तक कि वे अर्थहीन न हों या कानूनों के उद्देश्यों और उद्देश्यों के प्रतिकूल न हों। वर्तमान मामले में, जैसा कि देखा जा सकता है, धारा 232 में कोई अस्पष्टता नहीं है और न ही यह आई. बी. सी. के उद्देश्यों और उद्देश्यों के प्रतिकूल है।

धारा 2 (ग) पी. सी. अधिनियम, 1988 की प्रयोज्यता या अन्य:

51. पी. सी. अधिनियम की धारा 2 को लागू न करने पर याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता की ओर से की गई दलीलों और प्रत्यर्थीगण के लिए विद्वान अधिवक्ता की ओर से इसकी जोरदार जवाबी दलीलों पर विचार करने के लिए, पी. सी. अधिनियम की धारा 2 पर विचार करना प्रासंगिक होगा, जो कि निम्नानुसार है:-

"2. परिभाषाएँ।—इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा आवश्यक न हो,-

(ग) "लोक सेवक" का अर्थ है -

(i) कोई व्यक्ति जो सरकार की सेवा या वेतन में हो अथवा जिसे सरकार द्वारा किसी भी सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन के लिए शुल्क या कमीशन द्वारा पारिश्रमिक दिया जाता हो;

(ii) स्थानीय प्राधिकारी की सेवा या वेतन में कोई भी व्यक्ति;

किसी केंद्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित निगम या सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण या सहायता प्राप्त प्राधिकरण या निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 ([1956 का 1](#)) की धारा 617 में परिभाषित किसी सरकारी कंपनी की सेवा में या उसके वेतन में कोई व्यक्ति;

कोई भी न्यायाधीश, जिसके अंतर्गत कोई भी व्यक्ति है जिसे विधि द्वारा, चाहे स्वयं या व्यक्तियों के किसी निकाय के सदस्य के रूप में, कोई न्यायनिर्णयन संबंधी कार्य करने के लिए सशक्त किया गया है;

(V) न्याय प्रशासन के संबंध में किसी भी कर्तव्य का पालन करने के लिए न्यायालय द्वारा अधिकृत कोई भी व्यक्ति, जिसमें ऐसे न्यायालय द्वारा नियुक्त परिसमापक, प्राप्तकर्ता या आयुक्त शामिल हैं;

(VI) कोई भी मध्यस्थ या अन्य व्यक्ति जिसे कोई कारण या मामला न्यायालय या किसी सक्षम सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा निर्णय या रिपोर्ट के लिए भेजा गया है;

(vi) कोई भी व्यक्ति जो ऐसा पद धारण करता है जिसके आधार पर उसे मतदाता सूची तैयार करने, प्रकाशित करने, बनाए रखने या संशोधित करने या चुनाव या चुनाव के हिस्से का संचालन करने का अधिकार है;

(viii) कोई भी व्यक्ति जो ऐसा पद धारण करता है जिसके आधार पर वह किसी सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करने के लिए अधिकृत या अपेक्षित है;

(ix) कोई भी व्यक्ति जो कृषि, उद्योग, व्यापार या बैंकिंग में लगी हुई सहकारी समिति का अध्यक्ष, सचिव या अन्य पदाधिकारी है जो केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम के तहत स्थापित निगम से या सरकार या सरकारी कंपनी के स्वामित्व या नियंत्रित या सहायता प्राप्त किसी भी प्राधिकरण या निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956(1 की 1956) की धारा 617 में परिभाषित सरकारी कंपनी के तहत, कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रहा है या प्राप्त चुका है ।

(x) कोई भी व्यक्ति जो किसी भी सेवा आयोग या बोर्ड का अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है, चाहे वह किसी भी नाम से जाना जाए, या ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा किसी परीक्षा के संचालन या ऐसे आयोग या बोर्ड की ओर से कोई चयन करने के लिए नियुक्त किसी भी चयन समिति का सदस्य हो;

(xi) कोई भी व्यक्ति जो किसी भी विश्वविद्यालय का कुलपति या किसी भी शासी निकाय का सदस्य है, प्रोफेसर, पाठक, व्याख्याता या कोई अन्य शिक्षक या कर्मचारी, किसी भी पदनाम से, और कोई भी व्यक्ति जिसकी सेवाओं का विश्वविद्यालय या किसी अन्य

सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा परीक्षा आयोजित करने या आयोजित करने के संबंध में लाभ उठाया गया है;

(xii) कोई भी व्यक्ति जो किसी शैक्षणिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्थान का पदाधिकारी या कर्मचारी है, चाहे वह किसी भी तरीके से स्थापित हो, केंद्र सरकार या किसी राज्य सरकार या स्थानीय या अन्य सार्वजनिक प्राधिकरण से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रहा हो।

[(घ) "अनुचित लाभ" का अर्थ है कानूनी पारिश्रमिक के अलावा कोई भी पारितोष—इस खंड के प्रयोजनों के लिए,

(क) "पारितोष" शब्द आर्थिक संतुष्टि या धन में अनुमानित संतुष्टि तक सीमित नहीं है;

(ख) "कानूनी पारिश्रमिक" शब्द किसी लोक सेवक को दिए जाने वाले पारिश्रमिक तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें वे सभी पारिश्रमिक शामिल हैं जो उसे सरकार या संगठन द्वारा प्राप्त करने की अनुमति है, जिसकी वह सेवा करता है।]

स्पष्टीकरण 1.—उपरोक्त उपखंडों में से किसी के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति लोक सेवक होते हैं, चाहे वे सरकार द्वारा नियुक्त किए गए हों या नहीं।

स्पष्टीकरण 2.—जहाँ कहीं भी "लोक सेवक" शब्द आते हैं, उन्हें उन प्रत्येक व्यक्ति के बारे में समझा जाएगा जो वास्तव में लोक सेवक की स्थिति के कब्जे में है, उस स्थिति को बनाए रखने के उसके अधिकार में जो भी कानूनी दोष हो सकता है।"

52. ऊपर उद्धृत खंड 2 के प्रावधानों के अवलोकन से संकेत मिलता है कि आई. बी. सी. के तहत आई. पी. की भूमिका किसी एक की उप-धाराओं की सीमा जैसे (v), (vi) या (viii) के अंतर्गत आ सकती है। जहाँ तक उप-खंड (V) का संबंध है, के स्पष्ट पठन से यह स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति को न्याय प्रशासन से संबंधित किसी भी कर्तव्य का पालन करने के लिए न्यायालय द्वारा अधिकृत किया जाना चाहिए था जिसमें परिसमापक, प्राप्तकर्ता या ऐसे न्यायालय द्वारा नियुक्त आयुक्त शामिल हैं।

53. जहाँ तक उप-धारा (V) का संबंध है, यह एक सामान्य पठन से स्पष्ट है कि यह एक मध्यस्थ या अन्य व्यक्ति के संबंध में है जिसे कोई कारण या मामला न्यायालय या किसी सक्षम सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा निर्णय या रिपोर्ट के लिए भेजा गया है।

54. उप-धारा (V) के प्रभाव और परिणाम को संबोधित करते हुए, यह स्पष्ट है कि यह एक मध्यस्थ की क्षमता में नियुक्त एक व्यक्ति के संबंध में है जिसे एक वादकारी द्वारा स्थापित प्रतिद्वंद्वी दावों पर निर्णय लेने के लिए एक मामला भेजा जाता है, चाहे वह न्यायालय या एक सक्षम सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा नियुक्त किया गया हो, फिर भी, इसमें कोई भी व्यक्ति शामिल नहीं है जो "सुविधा प्रदाता" की भूमिका निभा रहा है। एक मध्यस्थ दावों का निर्णय करता है और अधिनिर्णय प्रदान करता है जिसे दीवानी अदालत में एक डिक्री की तरह लागू किया जा सकता है। जाहिर तौर पर, आई. पी. द्वारा ऐसी कोई निर्णायक

भूमिका नहीं निभाई जाती है। "नोस्किटूर ए सोसाइस" के सिद्धांत को लागू करने से, यह स्पष्ट है कि उप-धारा (V) में निर्धारित शब्द "अन्य व्यक्ति" एक ऐसा व्यक्ति होगा जो मध्यस्थ के समान या समान प्रकृति की भूमिका निभा रहा होगा।

55. उप-धारा (V) के संबंध में, पहले में, विद्वान वि.लो.अभि. और प्रत्यर्थी सं. 2/शिकायतकर्ता के विद्वान वकील के तर्कों में कुछ महत्व प्रतीत होता है क्योंकि रा.कं.का.अधि.द्वारा आईपी एक अंतरिम समाधान पेशेवर और परिसमापक के रूप में नियुक्त किया गया है, हालांकि, "ejusdem generis" (एक ही प्रकार) के सिद्धांत की बारीकी से जांच और अनुप्रयोग पर "साधारणतया, यह स्पष्ट है कि परिसमापक, प्राप्तकर्ता या आयुक्त जैसे व्यक्ति, जिन्हें संपत्तियों और अन्य परिसंपत्तियों के संबंध में निर्णय लेने और कुछ दावों आदि को प्रभावित करने वाले समान निर्णयों का निपटान करने की शक्ति प्रदान की गई है, वे ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं जो उप-धारा (V) के दायरे में हैं और चूंकि ऐसी कोई भूमिका या जिम्मेदारी समाधान पेशेवर को प्रदान नहीं की गई है, इसलिए उसे उप-धारा (v) के दायरे में नहीं आने के लिए कहा जा सकता है।

56. अब भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2(ग) की उप-धारा (viii) के प्रावधानों पर आते हुए, यह स्पष्ट है कि यह एक ऐसे व्यक्ति के संबंध में है जो एक ऐसा पद धारण करता है जिसके आधार पर वह किसी भी सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करने के लिए अधिकृत या अपेक्षित है, जिसका अर्थ है कि

कर्तव्य की प्रकृति उक्त प्रावधान में व्यक्तियों के समावेशन को निर्धारित करती है। इस उप-धारा की जांच करने के लिए, सी. आई. आर. पी. के विभिन्न चरणों में आई. पी. की भूमिका पर विचार करना उचित होगा। प्रारंभिक चरण में आई. पी. को एन. सी. एल. टी. द्वारा एक अंतरिम समाधान पेशेवर के रूप में नियुक्त किया जाता है जो प्रबंधन को संभालता है, परिसंपत्तियों और संपत्तियों का नियंत्रण लेता है, ऐसी परिसंपत्तियों को नष्ट होने या बर्बाद होने से रोकने के लिए आवश्यक कार्य करता है, सी. डी. को "चालू व्यवसाय" के रूप में रखता है और धारा 21 आई. बी. सी. के तहत सी. ओ. सी. का गठन करता है। एक बार सी. ओ. सी. के गठन के बाद, यह समाधान पेशेवर को नामित और नियुक्त करता है और आई. आर. पी. की भूमिका समाप्त हो जाती है। यह ध्यान देना भी उचित है कि आई. आर. पी. और आर. पी. एक ही व्यक्ति हो भी सकते हैं और नहीं भी। यह सी. ओ. सी. के एकमात्र विवेक पर निर्भर करता है कि वह या तो उसी आई. आर. पी. के साथ जारी रखे या किसी नए व्यक्ति को आर. पी. के रूप में नामित और नियुक्त करे। उक्त आर. पी. को विधिवत गठित सी. ओ. सी. द्वारा 66 प्रतिशत मतों से पारित करके चुना और नामित किया जाता है। एन. सी. एल. टी., आर. पी. की नियुक्ति का अनुरोध करने वाले सी. ओ. सी. के आवेदन पर, इसका समर्थन करता है और उस पर एक उचित आदेश पारित करता है। आर. पी. जो सी. आई. आर. पी. द्वारा से सी. डी. लेता है जब तक कि समाधान योजना की स्वीकृति से इसे पुनर्जीवित/पुनर्जीवित नहीं किया जाता है या अंततः समाप्त नहीं किया जाता है। दोनों निर्णय सी. ओ. सी. द्वारा

मतों द्वारा लिए जाते हैं और ऐसे निर्णयों में आर. पी. की कोई भूमिका नहीं होती है। यदि सी. डी. को परिसमापन के लिए भेजा जाता है, तो एन. सी. एल. टी. अगला परिसमापक नियुक्त करेगा जो सी. डी. को परिसमापन करने के लिए आई. बी. सी. के अनुसार सभी आवश्यक कदम उठाएगा।

57. जबकि व्यक्ति ऊपर वर्णित दो भूमिकाओं में से किसी एक का प्रदर्शन कर रहा है, अर्थात्, आई. आर. पी. या परिसमापक, ऐसे कर्तव्यों के निर्वहन की संभावना हो सकती है जिनमें कुछ कर्तव्य "सार्वजनिक कर्तव्य" प्रतीत हो सकते हैं, लेकिन क्या आर. पी. के रूप में किसी व्यक्ति की भूमिका "सार्वजनिक चरित्र" की प्रकृति में है, यह निष्कर्ष निकालना मुश्किल है। यह दृष्टिकोण, *स्विस रिबन (ऊपर)* और *आर्सेलर मितल (ऊपरोक्त)* में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के साथ, हालांकि समाधान पेशेवर के संबंध में, इस न्यायालय की राय को मजबूत करता है कि दिवाला पेशेवर केवल एक "सुविधा प्रदाता" है और सी. आई. आर. पी. के विभिन्न चरणों में इसकी अलग-अलग भूमिकाएँ हैं। वास्तव में, आई. पी. एक आई. आर. पी. से एक आर. पी. में और उसके बाद एक परिसमापक (जैसा भी मामला हो) के रूप में रूपांतरित हो जाता है, और इस तरह के रूपांतरण के कारण, कर्तव्यों को चिह्नित नहीं करना विवेकपूर्ण होगा, भले ही "सार्वजनिक" माना जाए, जैसा कि "सार्वजनिक चरित्र" की प्रकृति में है।

58. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय के लिए यह स्पष्ट है कि वर्तमान विषय पर पिछले सभी अधिनियम जैसे प्रांतीय दिवाला अधिनियम, 1909, दिवाला अधिनियम, 1920, एस. आई. सी. ए. 1985, आर. डी. डी. बी. एफ. आई. अधिनियम 1994 और SARFAESI आर. एफ. ए. ई. एस. आई. 2002 होने के बावजूद, जिन्हें आई. बी. सी. बनाने के लिए संहिताबद्ध किया गया था और उन व्यक्तियों पर निर्धारित भूमिकाओं और कर्तव्यों के बारे में जागरूक होने के बावजूद जिन्हें न्यायालयों या बोर्डों द्वारा परिसमापक, प्राप्तकर्ता और इसी तरह के रूप में नियुक्त किया गया था, और अपने समक्ष सभी प्रासंगिक सामग्री होने के कारण, विधायिका ने अपने विवेक से बौद्धिक संपदा को लोक सेवक के रूप में शामिल नहीं करना उचित और विवेकपूर्ण समझा और इस प्रकार इसे शामिल नहीं किया गया, इस प्रकार, एक जानबूझकर और जानबूझकर चूक थी। यह सामान्य बात है कि जो निर्दिष्ट नहीं है उसका आसानी से अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, विशेष रूप से यदि वह दंडात्मक प्रकृति का होगा। दूसरे शब्दों में, दंडात्मक परिणामों वाले कानून के किसी भी प्रावधान का सख्ती से अर्थ लगाया जाना चाहिए और उसमें निर्दिष्ट कुछ भी आसानी से नहीं पढ़ा जाना चाहिए या भरा नहीं जाना चाहिए।

59. पूरे कानूनी पहलू की विस्तार से जांच और परीक्षण करने के बाद, वर्तमान मामले में इस न्यायालय के विचार के लिए उठाए गए कानूनी मुद्दे का जवाब नकारात्मक में दिया जाता है।

60. जहाँ तक रांची में झारखंड उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय का संबंध है, *संजय कुमार अग्रवाल के मामले (उपरोक्त)* में, यह न्यायालय ऊपर बताए गए कारणों के लिए सम्मानित विद्वान न्या. चौधरी, द्वारा दिए गए निष्कर्ष से सम्मानपूर्वक रूप से भिन्न है।

61. परिणामतः, आई. बी. सी. की धारा 232 में आई. पी. को शामिल करने की चूक अनजाने में नहीं है, बल्कि विधानमंडल द्वारा एक विचारशील, स्वेच्छा से और जानबूझकर की गई है, और कानून के न्यायालयों को इसकी व्याख्या करने के लिए सशक्त होने के कारण, कानून बनाना या कैसस ओमिसस *casus orissus* की आपूर्ति नहीं करनी चाहिए, जो किसी भी मामले में निषिद्ध है।

62. आई. बी. सी. या पी. सी. अधिनियम 1988 या भा.दं.सं. 1860 की धारा 21, के अनुसार "लोक सेवक" है या नहीं, यह विशुद्ध रूप से विधानमंडल का अधिकार क्षेत्र है और यदि जरूरी और आवश्यक हो, तो विधानमंडल विधानों में आवश्यक संशोधन कर सकता है।

वर्तमान मामले में उत्पन्न होने वाले तथ्यों पर कानूनी विश्लेषण की प्रयोज्यता

63. उपरोक्त इस न्यायालय द्वारा किए गए विश्लेषण और निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, तथ्यों पर कोई भी अवलोकन/निष्कर्ष निकालने की आवश्यकता उतनी नहीं होगी जितनी तथ्यों पर दलीलें याचिकाकर्ता की धारणा पर आधारित थीं जो "लोक सेवक" के दायरे और परिभाषा के भीतर आती हैं, जैसा कि पी.

सी. अधिनियम, 1988 की धारा 2 (ग) में निर्धारित किया गया है, जिसे नकारात्मक माना गया है।

64. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और इस न्यायालय की सुविचारित राय में, एक दिवाला पेशेवर "लोक सेवक" के अर्थ के भीतर नहीं आता है जैसा कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2 की उप-धारा (ग) की किसी भी धारा में वर्णित है। परिणामतः, प्राथमिकी सं. आर. सी.-डी. ए. आई.-2020-ए.-0001 दिनांकित 11.01.2020 प्रत्यर्थी सं.1/सी. बी. आई. को रद्द कर दिया और अपास्त कर दिया जाता है।

65. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, लंबित आवेदन के साथ याचिका का निपटारा किया जाता है।

न्या. तुषार राव गंडेला

18 दिसंबर, 2023 / एनडी

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।